UNIVERSAL LIBRARY
OU_178721
UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H86/V31B Accession No. G.H.1972

Author वर्मा, मुकुटबिहारी।

Title बाहर की सीख। 1956

This book should be returned on or before the date last marked below.

बहन को सीख

लेखक
मुकुटबिहारी वर्मा
दैनिक 'हिन्दुस्तान' के प्रधान सम्पादक

१९५६
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
काश्मीरी गेट
दिल्ली-६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली-६

[सर्वाधिकार सुरक्षित]

मूल्य दो रुपये

मुद्रक
उग्रसैन दिगम्बर
इण्डिया प्रिंटर्स
एसप्लेनेड रोड, दिल्ली-६

सहोदरा विद्या

और

बहन शान्ति व तारा

की स्मृति में

उन सभी बहनों को

जो कन्या-जीवन में या

विवाह के प्रवेश-द्वार में हैं

सस्नेह समर्पित

प्राक्कथन

छोटी-सी पुस्तक की लम्बी-चौड़ी भूमिका लिखना ठीक नहीं। संक्षेप में यह बता देना ही ठीक होगा कि नेहरू जी (जवाहरलाल) की 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' तथा पत्रों के रूप में लिखी अंग्रेजी की एक अन्य पुस्तक को पढ़कर मुझे लगा कि किसी विषय को समझने का यह अच्छा तरीक़ा है। उसी का परिणाम यह पुस्तक है। स्त्रियों की समस्या मेरा प्रिय विषय रहा है, अतः 'बहन को सीख' के रूप में ही इस दिशा में यह प्रयास है।

विविध विषयों को लेकर लिखे गये छः पत्रों का यह संग्रह है, जिन्हें विषयानुसार दो खण्डों (कन्या-जीवन और वधू-जीवन) में विभक्त किया गया है। तीसरे खण्ड में इसी सम्बन्ध में हुए पत्र-व्यवहार के कुछ अंशों का संकलन है। कम-बेश लगभग सभी पत्र विविध पत्रों में प्रकाशित हो चुके हैं और उन्हें पसन्द किया गया है। इसी से प्रेरित होकर इन्हें पुस्तक रूप देने की प्रेरणा हुई। आशा है, छोटी बहनों के लिए, जो अभी दुनिया की प्राथमिक सीढ़ियों पर हैं, यह उपयोगी होगी। इसी भावना से यह प्रस्तुत है, उन्हें इससे लाभ हो, यही कामना है और इसी में इसकी सार्थकता है।

मुकुटबिहारी वर्मा

दिल्ली
वैशाखी, संवत् २०१३

क्रम-सूची

पृष्ठ

पहला खण्ड [१—३८]
ज्ञान की बातें : कन्या-जीवन

१. हँसो-खेलो, खाओ-पिओ, मस्त रहो ३
२. तुम क्या पढ़ोगी ९
३. तुम क्या लोगी १८
४. तुम्हारा बर्ताव २९

दूसरा खण्ड [३९—७८]
विवाह की भेंट : वधू-जीवन

१. बहन सरला को ४१
२. बहन तारावती को ६७

तीसरा खण्ड [७९—९८]
विविध

१. नववधू की कठिनाई ८१
२. विवाह झंझट है ९०
३. आनन्द का राजमार्ग ९४

पहला खण्ड

ज्ञान की बातें

कन्या-जीवन

१

हँसो-खेलो, खाओ-पिओ, मस्त रहो !

२

तुम क्या पढ़ोगी ?

३

तुम क्या लोगी ?

४

तुम्हारा बर्ताव

कन्या-जीवन

१

हँसो-खेलो, खाओ-पिओ, मस्त रहो !

प्रिय बहन कान्ति,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। यह देखकर कि अब तुम लिखना सीख चली हो और चिट्ठी भेजने लगी हो, बड़ी खुशी हुई। ईश्वर करे कि पढ़ाई-लिखाई की ओर दिन-रात तुम प्रगति करती जाओ और जल्दी एक होशियार व बुद्धिमान लड़की बन जाओ। लेकिन जहाँ पढ़ाई-लिखाई के द्वारा तुम्हारा मन ऊँचा हो, वहाँ मैं चाहूँगा कि और भी कई बातों का तुम खयाल रखो। पढ़ना-लिखना तो जरूर चाहिए, क्योंकि इसके बिना जीवन में आनन्द नहीं आता; लेकिन जिनके बिना जीवन जीवन ही नहीं रहता, उन बातों को भी तुम्हें भूलना नहीं चाहिए।

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। तुम्हें अपने आपको सजीव—जिन्दादिल—बनाना चाहिए। पढ़ने-लिखने से उसमें परिपक्वता ही आए, यह न हो कि जो सजीवता

तुम में है उससे भी हाथ धो बैठो। गम्भीरता, जो कि पढ़ने-लिखने से आती है, अच्छी चीज है; लेकिन गम्भीरता का मतलब मायूसी, विरक्तता, मुर्दादिली, नहीं है। गम्भीरता का मतलब है ज्ञान की प्राप्ति और उस ज्ञान-प्राप्ति से होनेवाला विवेक। पढ़ने-लिखने से हमें बात की गहराई पर पहुँचने की प्रेरणा मिलनी चाहिए और उससे फूहड़पन में कमी होनी चाहिए। मूर्खता हममें से निकल जानी चाहिए। यह नहीं कि जीवन ही नीरस बन जाय।

जीवन में सफल होने के लिए जहाँ ज्ञान की आवश्यकता है, वहाँ जीवन को बनाए रखने के लिए हमें कुछ करना भी तो चाहिए। और जीवन के बने रहने का मतलब है दिल का जिन्दा बना रहना, जिसके लिए एक ओर हमारे शरीर का और दूसरी ओर हमारे मन का स्वस्थ होना जरूरी है। जब हमारा शरीर ठीक होगा, उसमें कोई विकार न होगा, और इसी प्रकार हमारा मन भी ठीक रहेगा, तो अपने आप हममें हर्ष, उत्साह व कर्मण्यता की स्फूर्ति होगी और जो भी हमारे सम्पर्क में आएगा वही हमसे इन बातों की प्रेरणा पाएगा।

"लेकिन", तुम कहोगी, "यह अपने बस की बात थोड़े ही है जान-बूझकर भला कौन अपने शरीर और

मन को अस्वस्थ करना चाहेगा ?" यही बात और लोग भी कहते हैं। परन्तु, बहन, मैं कहता हूँ, ऊपर से ऐसा दीखे भले ही कि यह बात हमारे बस की नहीं है पर इसकी बहुत कुछ जिम्मेदारी हमीं पर होती है। जैसा हमारा मन और शरीर होता है उसका बहुत कुछ कारण खुद हम ही होते हैं। अगर हम शुरू से इस बात का ध्यान रक्खें तो पहले तो कोई खराबी ही मुश्किल से पैदा होगी, और अगर किसी प्रकार एक अंग में हुई तो दूसरे के सहारे उसे ठीक करने में बहुत मदद मिलेगी। यों मरना-जीना तो हरएक के साथ लगा ही हुआ है; परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि हम जब तक जिएँ तब तक अच्छी तरह न जिएँ। और अच्छी तरह जीने के लिए शरीर और मन का स्वस्थ रहना कुछ कम महत्त्व की बात नहीं है।

जरूर तुम यह पूछोगी, कि शरीर और मन आखिर स्वस्थ रह कैसे सकते हैं ? मैं कहूँगा, तुम या कोई भी इसपर ध्यान दो तो मालूम पड़ेगा, इसके लिए दो बातें जरूरी हैं—(१) शरीर की तत्परता और (२) मन की प्रसन्नता।

शरीर की तत्परता के लिए या तो खूब कामकाज करना चाहिए, या व्यायाम। लेकिन तुम या तुम्हारे जैसी

उम्र वाली लड़कियों के लिए बजाय इनके, यह ठीक होगा कि खेल-कूद में कमी न आने दो। दौड़-धूप, कूद-फाँद, खेल-खिलौनों में तुम कोताही न करो। 'कोई क्या कहेगा ?' 'हम लड़कियाँ हैं। हमें बहुत ऊधमगर्दी नहीं करनी चाहिए; ज्यादा शोरगुल नहीं करना चाहिए।' ऐसे विचार बड़ी उम्र के लिए रहने दो। अभी तो ऐसा समझ लो, मानो खेलने-कूदने, खाने-पीने और निर्द्वन्द्व रहने के लिए ही तुम बनी हो। और बेफिक्र होकर यही तुम्हें करना चाहिए।

मन की प्रसन्नता के लिए यह जरूरी है कि तुम हमेशा खुश रहने की आदत डालो। खुश रहने का अपना स्वभाव बना लोगी तो, कैसी भी कोई स्थिति क्यों न आए, तुम विचलित न होगी। यह आदत इतनी अच्छी है कि जन्मभर तुम्हारे लिए बड़ी फायदेमन्द होगी। यह जरूर है कि इसके लिए तुम्हें कुछ प्रयत्न करना होगा। खुले दिल की हँसी, खिलखिलाकर हँसना, इसके लिए राजमार्ग है। तुम्हें चाहिए कि खूब हँसा करो और दूसरों को भी हँसाया करो। हँसना कितना जरूरी है, यह इसी बात से जाहिर है कि अब इसके द्वारा विविध बीमारियों को दूर करने के चिकित्सालय तक खुलने लगे हैं। अभी हाल की खबर है कि पेरिस

(फ्रांस) के एक डाक्टर ने एक हास्य-चिकित्सालय खोला है, जिसमें रक्तशोषी अजीर्णग्रस्त धनिकों को गुदगुदी देकर पागलों की तरह हँसाया जाता है। ग्रामोफोन में अर्थहीन, निरा बेवकूफी का, रिकार्ड बजाया जाता है, जिसमें बात-बात पर मूर्खतापूर्ण अट्टहास के सिवा और कुछ नहीं होता। फलतः लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं, उनकी आँखों से हँसी के मारे आँसू निकल पड़ते हैं, और धीरे-धीरे वे अपने रोग से भी मुक्त हो जाते हैं।

परन्तु, मैं जानता हूँ, सतत प्रसन्नता और खुला हास्य तब तक असम्भव हैं जब तक कि हम अपने अन्दर से (१) गुस्सा करने व चिड़चिड़ाने, (२) जलने-कुढ़ने और (३) बात-बेबात चिन्ता करने की आदत न छोड़ दें तथा (४) विचारों की शुद्धता पर पूरा ध्यान न रक्खें। क्रोध व तुनकमिजाजी, जलन-कुढ़न और चिन्ता-व्यथा ऐसे घुन हैं जिनके मौजूद रहते कोई भी पनप नहीं सकता, न खुश रह सकता है, और न हँस ही सकता है। जहाँ एक बार कोई इनके चंगुल में फँसा नहीं कि फिर ज्यादा-से-ज्यादा ही फँसता और अपने को चौपट करता जाता है। इसलिए तुम्हें, बल्कि प्रत्येक लड़की को, इस बात की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि

इन राक्षसों के चंगुल से सदा सावधान रहें--अव्वल तो इनके पंजे में फँसे ही नहीं, और किसी कारणवश फँस गई हो तो जल्दी-से-जल्दी छूटने की कोशिश करे। यह तय है कि अपने विचारों को शुद्ध रक्खा जाय और अन्दर-बाहर से खिला-खुला रहा जाय, तो इन राक्षसों के चंगुल में फँसने की शक्यता अपने आप थोड़ी कम हो जाती है। अतः जहाँ एक ओर पढ़ने-लिखने में तुम कोताही न करो, वहाँ साथ-साथ मेरा तुमसे यह भी कहना है कि अपनी जिन्दगी से भी तुम बेखबर न रहो। तुम बुद्धिमान बनो, पर साथ ही सजीव भी बनी रहो।

वसन्त के खिलने-खुलने के इस त्यौहार पर मेरी तुमसे यही आकांक्षा है कि तुम भी ऐसी ही खिली-खुली और प्रसन्न रहो। हँसो-खेलो, खाओ-पिओ और मस्त रहो। इसीमें तुम्हारे भविष्य का निर्माण छिपा हुआ है, इसलिए इसीमें तुम्हारी भलाई है। आशा है, तुम इसपर ध्यान दोगी।

लिखना तो और भी बहुतसी बातें चाहता था; लेकिन अब फिर। अभी तो यही बहुत लम्बी चिट्ठी हो गई। अच्छा, स्नेह ! और सबको यथायोग्य।

दिल्ली
वसन्त पंचमी

तुम्हारा भाई
मुकुटबिहारी वर्मा

२

तुम क्या पढ़ोगी ?

प्रिय बहन,

आज ही एक चिट्ठी तुम्हें लिख चुका हूँ । वही इतनी बढ़ गई थी कि आखिर इच्छा न होते हुए भी खतम की और सोचा कि बाकी फिर कभी किसी दूसरी चिट्ठी में लिखूँगा । लेकिन विचारों ने मेरे दिमाग को इतना घेर रक्खा है कि उन्हें जब तक लिख न दूँगा, मुझे चैन नहीं पड़ेगा । इधर उस चिट्ठी को तुम्हारी भाभी ने देखा तो कहा, "जहाँ खेल-कूद पर इतना जोर दिया वहाँ पढ़ाई-लिखाई पर कुछ न लिखने से चिट्ठी एकांगी हो गई है, और यह भय है कि इसका असर यह न हो कि पढ़ाई-लिखाई को नमस्कार ही कर लिया जाय । बीबी रानी को कोई कुछ कहेगा तो तुम्हारा पत्र उसे खामोश करने का सहारा बनाया जायगा ।" इससे इन विचारों को भी लिख डालने की इच्छा और प्रबल हो उठी है । फिर बसन्त सरस्वती-दिवस भी तो है । बंगाली भाई खास तौर से इस दिन सरस्वती-पूजा करते हैं । अतः शिक्षा के बारे में

भी कुछ-न-कुछ लिखकर ही रहूँगा, फिर चाहे उसे भेजूँ एकाध दिन बाद ही—जितने में कि तुम पहली चिट्ठी को अच्छी तरह पढ़-समझ लो। अस्तु।

पढ़ाई-लिखाई की बात करते ही जो बात सबसे पहले मन में उठती है वह यह है कि तुम सच्ची शिक्षा प्राप्त करो, उसके आडम्बर में मत फँसो। आजकल आम तौर पर यह देखा जाता है कि सच्चा ज्ञान जितना प्राप्त नहीं किया जाता उतना, शिक्षा के मार्ग पर अग्रसर होते हुए, लोग—स्त्री-पुरुष दोनों—दिखावटी होते जा रहे हैं। पढ़ने का मतलब मानो फैशनपरस्ती हो रहा है, और ऐंठ उसका दूसरा रूप है। यही कारण है कि शिक्षा प्राप्त करके पुरुष अपने पुराने धन्धों को हीन समझने लगते हैं, और स्त्रियों के लिए घर-गृहस्थी मानो बला हो जाती है। इस प्रकार शिक्षा से जहाँ उनमें अपने काम को अधिक अच्छाई के साथ करने की बान पड़नी चाहिए, उलटे उसके प्रति नफरत के भाव धारण करके वे उसे बिलकुल भूल ही जाते हैं और क्लर्की, टाइपगीरी आदि के शहरी काम-काजों में अपनी 'साहबी' कायम रखने की कोशिश करते हैं। पर इन धन्धों में काम करने वालों की संख्या आखिर सीमित ही हो सकती है, इसलिए बाकी लोगों को बेकारी और

ग्रावारागर्दी का जीवन बिताते हुए ही रहना पड़ता है। इसका नतीजा जो भी हो सकता है वह ग्राज हम सबके सामने है।

शिक्षा का मतलब है, ग्रपना विकास—ग्रपनी बौद्धिक ग्रौर मानसिक शक्ति को इतना बढ़ाना कि जिससे दुनिया में ग्रपने कर्त्तव्य-कर्मों को बखूबी पहचाना ग्रौर उनका पालन किया जा सके। स्त्री या पुरुष हरएक को समझना चाहिए कि दुनिया में वह क्यों ग्राया है, उस उद्देश्य की पूर्त्ति उसे कैसे करनी चाहिए, किस तरह उसे ग्रपना जीवन-यापन करना चाहिए, ग्रौर किसके साथ किस तरह रहना-बरतना चाहिए। कर्त्तव्य का भान होने से ग्रादमी में जिम्मेदारी ग्राती है। जिम्मेदारी ग्राने पर ग्रपने हरएक काम ग्रौर व्यवहार के लिए ग्रादमी को सोचना पड़ता है, ग्रपने हरएक कदम को दुनिया में सम्हाल-सम्हाल कर ग्रागे बढ़ाना पड़ता है; मतलब यह कि उसे संजीदा ग्रौर दुनियादार, यानी व्यवहारकुशल, बनना होता है। ग्रौर, दुनियादार कौन ग्रच्छा होता है ? शिक्षा से हमें इसका विवेक होता है। शिक्षा हमें यह बताती है कि दुनियादारी दो तरह की होती है—एक तो सदा दूसरे को बेवकूफ बनाकर, नुकसान पहुँचाकर, या जिस तरह

भी हो उस तरह, अपना स्वार्थ सिद्ध करने को तैयार रहना; और दूसरे अपने जीवन को अधिक-से-अधिक शुद्ध और ऊँचा बनाते हुए, अपने व्यवहार को विनम्र और सर्वप्रिय बनाते हुए, सबकी भलाई के लिए प्रयत्न करते हुए अपनी भी भलाई करना। शिक्षा हमें यह निर्णय कराती है कि इनमें से किसे हम ग्रहण करें और कैसा हमारा व्यवहार हो। मतलब यह कि शिक्षा-प्राप्ति से हमें अपने व्यवहार को अधिक-से-अधिक विनम्र, वाणी को अधिक-से-अधिक संयत और मधुर तथा मन को अधिक-से-अधिक शुद्ध करने की प्रेरणा मिलनी चाहिए।

जब हमारा मन शुद्ध होगा, हमारी विवेक-बुद्धि जाग्रत होगी, तो अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति का भी हमें खयाल आयगा। तब दूसरों की निन्दा-भर्त्सना करने की फिक्र छोड़कर अपने खुद के फर्ज को अधिक-से-अधिक अच्छाई के साथ अदा करने की हमें फिक्र होगी। और तब, जैसे किसान का लड़का ऊँची शिक्षा पाकर खेती से नफरत करने के बजाय उसे उन्नत करने का प्रयत्न करेगा, वैसे ही, प्रत्येक स्त्री अपने घरेलू धन्धों को हिकारत की नजर देखना छोड़कर उन्हें अच्छाई और सुघड़ता के साथ सम्पन्न करने का

ही प्रयत्न करेगी।

स्त्री और पुरुष, प्रकृति के ही दो रूप हैं। दोनों प्रकृति के ही अंश होने के कारण, सृष्टि में कुछ काम तो दोनों ही के लिए एक-से हैं। इसलिए, जहाँ तक शिक्षा या ज्ञान का सम्बन्ध है, दोनों को सब विषयों का अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त करने की अवश्य कोशिश करनी चाहिए। परन्तु प्रकृति के वे एक-दूसरे से भिन्न रूप हैं, इसलिए उनके कुछ परस्पर भिन्न कर्त्तव्य-कर्म भी हैं। क्या यह ठीक नहीं है कि जैसे किसान को और-और ज्ञान के साथ अपने खेती के धन्धे का और लुहार को अपने लुहारी धन्धे का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना चाहिए वैसे ही स्त्रियाँ भी अपने सम्बन्ध का--स्त्रीत्व-सम्बन्धी--ज्ञान खास तौर से प्राप्त करें ?

"यह तो ठीक, पर," तुम पूछोगी, "स्त्रियों का खास विषय क्या है ? यह भी तो बताओ।" हाँ, यह मैं बताऊँगा। देखो, पुरुष और स्त्री को जहाँ सृष्टि के दो रूप माना गया है वहाँ यह भी माना गया है कि एक (पुरुष) बाहर का राजा है और दूसरी (स्त्री) घर की रानी। मतलब यह कि एक की प्रवृत्ति बाहरी है और दूसरे की घरेलू। और साफ कहूँ तो, एक का

काम है बाहर की यानी कमाने की फिक्र करना, और दूसरे का काम है उस कमाई का सदुपयोग करना, यानी घर को सम्हालना और गृहस्थी को ढंग से चलाना। इसलिए जहाँ पुरुष की शिक्षा का एक उद्देश्य धनार्जन यानी कमाई होना चाहिए, वहाँ स्त्री की शिक्षा का मुख्य लक्ष्य गार्हस्थ्य एवं मातृत्व होना ही चाहिए। उसे खाना बनाने, ढंग से खिलाने-पिलाने, स्वास्थ्य-सफाई के नियमों, छोटे-बड़ों की प्रसन्नता प्राप्त करने आदि की असली बातें अवश्य जाननी चाहिएँ। अपनी और घर के छोटे-बड़ों की प्रसन्नता के लिए संगीत (गाना-बजाना), नृत्य और चित्रकारी व शिल्प-कला का भी उसे ज्ञान एवं अभ्यास होना चाहिए। साथ ही, उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि इनके किस रूप को किसके सामने प्रकट करना चाहिए और किसके सामने नहीं तथा किस रूप को हानिकारक समझकर त्यागना चाहिए।

एक बात और। अभी तुम छोटी हो, इसलिए तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं—और, मैं भी इस दुविधा में हूँ कि यह बात तुम्हें लिखना उचित भी है या नहीं—पर मातृत्व सभी स्त्रियों का प्रधान कर्त्तव्य है। हरएक स्त्री, फिर वह चाहे अभी छोटी ही क्यों

न हो, संभावित माता है। इसलिए, स्त्री-शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि शुरूआत से ही प्रत्येक लड़की को अपने इस विशिष्ट कर्त्तव्य का भान हो और वह अच्छाई के साथ इस कर्त्तव्य-पालन की तैयारी करे। सर्वसामान्य ज्ञान के साथ-साथ अपने इस विशिष्ट विषय का ज्ञान हरएक लड़की को अवश्य प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए प्रजननशास्त्र तथा बाद के कर्त्तव्य यानी शिशु-पालन की शिक्षा उन्हें मिलनी चाहिए। ऐसा होने पर ही सन्तान का यथायोग्य पालन-पोषण हो सकेगा और वे वैसी बन सकेंगी जैसी कि उन्हें होना चाहिए।

मैं नहीं जानता कि स्कूल में जो शिक्षा तुम पा रही हो वह इन सब बातों की कहाँ तक पूर्ति करती है। पर आजकल की पाठ्य-प्रणाली का जो थोड़ा-सा ज्ञान मुझे है उसपर से मेरा ऐसा खयाल है कि स्त्री-शिक्षा के इन सब पहलुओं पर उसमें ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिए, मैं चाहता हूँ, इसकी पूर्त्ति तुम घर में करो। तुम्हें स्कूली किताबों के अलावा भी साहित्य पढ़ना तथा बड़ी-बूढ़ियों की बातों को कान लगाकर सुनते रहना चाहिए। मैं जानता हूँ कि अधिकांश लड़कियों को बड़ी-बूढ़ियों की बातें वैसे ही नहीं सुहातीं जैसे अधिकांश लड़कों को अपने बुजुर्गों की बातें पसन्द

नहीं होतीं। लेकिन शिक्षा से जो विनम्रता आनी चाहिए उसका तकाजा है कि हम अपने से बड़े सभी की बातों को ध्यान के साथ सुनें और शिक्षा से जो विवेक हमें प्राप्त होता है उसकी कसौटी पर उन्हें कसकर निर्णय करें कि उनमें कौनसी बात तो ग्रहण की जाय और कौनसी नहीं। निस्सन्देह हमारा भाव जिज्ञासा का हो, न कि अवज्ञा का, नहीं तो विवेक-बुद्धि जरा काम न आयगी और हरएक लड़की सब बातों में बुरा-ही-बुरा देखेगी।

साहित्य जो तुम पढ़ो उसमें भी विवेक-बुद्धि और जिज्ञासा-भाव तो रहना ही चाहिए। इस भाव से पढ़ने पर एक बार बुरी चीज का भी तुमपर बुरा असर न हो सकेगा, जब कि ऐसा न होने पर तुम्हारा कोमल हृदय सहज ही बुराई की ओर प्रवृत्त हो सकता है। शृंगाररस की कविताओं और जासूसी व प्रेमाकर्षण के उपन्यास-कहानियों से बहुत-से स्त्री-पुरुषों को चौपट होते देखा गया है; इसलिए इन्हें पढ़ते समय खास तौर से सावधान रहने की जरूरत है। वैसे अच्छा तो यह है कि सभी उपन्यास-कहानियाँ और कविताएँ पढ़ते समय थोड़ा सावधान रहा जाय। उनसे मनोरंजन तो किया जाय, पर मन को दूषित न होने देना चाहिए।

उनमें विभिन्न पात्रों के मनोवैज्ञानिक विकास पर सूक्ष्म विचार करके गुण-ग्रहण की ही प्रवृत्ति हो । महान् स्त्री-पुरुषों के चरित्र इसी दृष्टि से उच्च जीवन के आकांक्षी युवक-युवतियों के लिए बहुत लाभप्रद माने गए हैं । और इतिहास का उद्देश्य भी यही है कि उसमें हुई गलतियों से हम बचने का प्रयत्न करें और जो अच्छाइयाँ हुईं उन्हें ग्रहण करने को तत्पर हों । हमारा चरित्र तो ऊँचा होना ही चाहिए, जिसके लिए चरित्र को बल देने और आत्मा को ऊँचा उठानेवाले नीति एवं धर्म के ग्रन्थों की ओर हमारा उन्मुख होना आवश्यक है । रामायण-महाभारत तो सर्वसाधारण की चीज हैं ही, थोड़ा अधिक ज्ञान होने पर उपनिषदों व गीता आदि ग्रन्थों का मनन भी वाञ्छनीय है । इसके बाद, ज्ञान की परिपक्वता के साथ-साथ, विविध धर्म-ग्रन्थों और सन्त-वाणियों को पढ़कर हरएक की अच्छाइयों का पता लगाना और उन्हें अपने जीवन में लाना कर्त्तव्य है । यह सब किया जाय तो, मुझे विश्वास है, किसी भी राष्ट्र की स्त्रियों का और उसके फलस्वरूप उसके पुरुषों का भी जीवन बहुत ऊँचा उठ जायगा, उसमें समृद्धि और शान्ति होगी और वह सृष्टि में नन्दनकानन बने बगैर नहीं रहेगा ।

बस, अब मुझे नींद आने लगी है। अरे, रात के बारह बज रहे हैं! अच्छा, चलो, बसन्त की बिदाई की ही चिट्ठी इसे समझ लो। आशा है, पहली और इस चिट्ठी की, दोनों की, बातों पर तुम ध्यान दोगी तो घाटे में नहीं रहोगी; बल्कि अपने जीवन में कुछ फायदा ही उठाओगी। अस्तु, बारह की टन-टन के साथ मैं भी यह चिट्ठी समाप्त करता हूँ।

दिल्ली
वसन्त-पंचमी

तुम्हारा भाई
मुकुटबिहारी वर्मा

३

तुम क्या लोगी ?

प्रिय बहन,

आज शिवरात्रि है। मैं शिवरात्रि के मेले में गया था। वहाँ कुछ ऐसी बातें देखने में आईं कि मेरा मन तुमसे कुछ बातें करने के लिए उद्विग्न हो उठा। क्या अच्छा होता कि तुम मेले में मेरे साथ होतीं। लेकिन मेला तो अलग, तुम तो यहाँ भी नहीं हो। इसलिए इस चिट्ठी में ही अपने मन के गुब्बार निकालने की कोशिश करता हूँ।

मेले में बहुत-से लोग आए थे। पुरुष भी थे और स्त्रियाँ भी थीं। छोटे, बड़े, बच्चे तो थे ही। मैंने देखा, बच्चे अक्सर इस या उस चीज के लिए अपने माँ-बाप, बहन-भाई आदि से जिद करते जाते थे। जहाँ कोई चीज दीखी नहीं कि उसके लिए लगे मचलने—नहीं लेकर दी गई तो मुँह बनाना, रोना-झींकना शुरू हुआ। आगे चले और दूसरी चीज पर नजर पड़ी, तो चट पहली का ध्यान छोड़ उसके लिए मचलने-मठरने लगे। कई को तो ऐसा भी देखा कि उनकी

जिद पर एक चीज उनके माँ-बाप ने ले भी दी और उस वक्त वह फूलकर कुप्पा भी हो गए, मगर आगे चलकर जहाँ और कोई चमकती-दमकती चीज देखी नहीं कि बच्चाराम उसपर लट्टू हुए और पहली को झटकते-फेंकते हुए, या जरा चंट हुए तो उसे चुपचाप जेब में खिसकाकर, नई के लिए वाबेला मचाने लगे। चीज कैसी है, काम की है या व्यर्थ, टिकाऊ है या दो रोजा, और सबसे अधिक यह कि अपनेको उसकी कोई जरूरत भी है या नहीं--इन बातों पर कोई ध्यान न होता था, न यही कोई खयाल था कि आखिर सभी चीजें कहीं खरीदी भी जा सकती हैं! बस, 'ले दो', 'ले दो' की रट थी। बेचारे माँ-बाप समझाते, फुसलाते, डाँटते-डपटते, एकाध चीज ले भी देते, और कभी-कभी बहुत तंग आकर चपत या घूँसा भी रसीद कर देते। बच्चों की रट इससे दब भले ही जाती, पर रोना-बिसूरना, मुँह बनाना तो दीखता ही। मन में मानो उनके यही भाव होता, 'देखो, बाबूजी कैसे हैं जो हमारी कही जरा-सी चीज नहीं ले के देते!' इस तरह जहाँ मेले में गए दिल-बहलाव के लिए, वहाँ और दिल दुखाकर उन्हें लौटना पड़ा।

एक-दो नहीं, बहुत-से बच्चों का यही हाल मैंने

देखा। स्वभावतः, यह देखकर, पहले तो मुझे बच्चों के प्रति सहानुभूति ही हुई और मन-ही-मन में सोचने लगा, 'ओह, कैसे निठुर हैं ये माँ-बाप, जो बच्चे की जरा सी इच्छा भी पूरी नहीं करते; और वह सिर्फ कुछ पैसों की खातिर !' पर जब जरा ज्यादा सोचा तो खयाल हुआ, 'बेचारे आखिर करें भी क्या ? यह तो हो ही कैसे सकता है कि सभी चीजें वे खरीद डालें ?' मुझे अपने ही सम्बन्ध की एक बात याद आई। तुम्हें याद होगा, जब छुट्टियों में मैं घर आया था और मैं, तुम व मुन्नी बाजार गए थे। तुम तो फिर भी कुछ सयानी हो चली थीं, पर मुन्नी का भी क्या यही हाल नहीं था ? और क्या उस समय मुझे भी उसके साथ कुछ-कुछ ऐसी ही सख्ती नहीं करनी पड़ी थी, हालाँकि बहुत दिनों बाद मैं वहाँ गया था और बड़ी उमंगों के साथ वह 'भय्या' के साथ बाजार चली थी ? तब, बजाय माँ-बाप पर झुँझलाने के, मैं यह सोचने लगा कि आखिर ऐसा होता क्यों है ?

बहुत-कुछ सोचने के बाद, मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि इसका कारण है बच्चों में समझ की कमी। हम लोग उन्हें यह समझाने की कोशिश नहीं करते कि उन्हें कौन चीज लेनी चाहिए और कौन

नहीं। सभी घरों में आम तौर पर यह होता है कि बच्चाराम की जिस चीज पर नजर जम जाय, बड़े लोग, यह सोचकर कि उसे पाकर वह खुश होगा, इस बात पर ध्यान नहीं देते कि वह उसके किसी काम की है भी या नहीं। और तो और, सिगरेट व दिया-सलाई की पेटियाँ तक बच्चों को देने से इनकार नहीं किया जाता, फिर नजर बचाकर या चकमा देकर उनसे उन्हें ले भले ही लिया जाय। इसीका यह नतीजा होता है कि हमें उनसे छिपा-छिपाकर चीजें रखनी पड़ती है और उनमें यह आदत पड़ जाती है कि जहाँ किसी चीज पर उनकी नजर गई नहीं कि वे उसके लिए मचलने लगे। प्रारम्भ के ये संस्कार कई में तो बड़ी उम्र तक भी नहीं छूटते। लेकिन कोई कितना ही मालदार हो, हरएक चीज को लेने की उसकी इच्छा कभी पूरी नहीं हो सकती। फलतः अतृप्ति और मलिनता का उसे शिकार होना पड़ता है, जिससे फिर अनेक मानसिक और शारीरिक व्याधियाँ उसे आ घेरती हैं।

'क्या करें,' तुम कहोगी, 'मन तो करता ही है।' जब किसी बच्चे को समझाया जाता है तो गम्भीरता के साथ वह यही जवाब देता है।

हमारे पड़ौस में सरोज नाम की एक लड़की है; उसकी बात तुम्हें सुनाऊँ ? उसका जूता फट चला था, एड़ी की कीलें कुछ-कुछ चुभने लगी थीं और आगे से भी वह घिस रहा था। ऐसे जूते को पहनकर चलने में उसे थोड़ी दिक्कत तो होती ही थी। उसके पिता को जब तनख्वाह मिली, तो वह उसे नया जूता पहनाने के इरादे से बाजार ले गए; लेकिन बाजार में और चीजों पर उसकी नजर पड़ी और उनके लिए वह जिद करने लगी। आखिर चाबी से नाचने वाली एक बिल्ली के लिए तो, जैसी कि उस बार मैं मुन्नी के लिए लाया था, वह मचल ही गई और पिता के यह कहने पर भी कि इस वक्त मेरे पास ज्यादा पैसे नहीं हैं, यही जवाब मिला, 'अच्छा, ऐसा है तो अभी जूते रहने दो। जूते अगले महीने ले देना; तब तक मैं इन्हीं जूतों से जैसे-तैसे काम चला लूँगी।' पिता को यह ठीक तो न लगा; पर जब देखा कि यह मानती ही नहीं, और मना करते हैं तो बहुत बुरा मानती है, तब बजाय जूतों के उसीको खरीद लाए। कहना न होगा कि उस वक्त सरोज को बेहद खुशी हुई। दो-चार दिन तो वह इतनी खुश रही कि कुछ न पूछो। लेकिन उसकी उछल-कूद उसके जूते महाशय के लिए खुशी की

बात साबित न हुई, बल्कि, उन्होंने और भी जल्दी मुँह फाड़ दिया। और जब उन्हें पहनकर चलना बिलकुल ही दूभर हो गया तथा उनकी कीलों से पैर छलनी होने लगे, तब सरोज रानी की सब खुशी काफूर हो गई। बिल्ली एक ओर पड़ी और पैरों की चिन्ता बढ़ी। बाबूजी से जूतों के लिए तकाजे-पर-तकाजे होने लगे; पर वह तनख्वाह मिले बगैर ला नहीं सकते थे, इसलिए उनपर झुँझलाया जाने लगा।

एक बार तुम्हारी भाभी से रोती हुई वह अपने बाबूजी और अपनी अम्माजी की कठोरता की शिकायत कर रही थी। इत्तफाक से मैंने भी उसे सुन लिया। तब सरोज को दम-दिलासा देकर मैंने समझाया, कि "क्यों तुम्हीं ने नहीं कहा था कि 'जूतों के बिना मैं महीने भर काम चला लूँगी; तुम पहले मुझे यह बिल्ली खरीद दो?' फिर भला उन बेचारों का क्या कसूर? तुम्हीं बताओ, जब पैसे बिल्ली पर खर्च हो गए तो, जब तक नई तनख्वाह न आए, वह जूते खरीदने को पैसे कहाँसे पावेंगे?" इधर तुम्हारी भाभी ने भी कहा, "हाँ, सरोज, ये ठीक तो कहते हैं। सचमुच तुमने उस वक्त बड़ी गलती की। बिल्ली का नाच देख तुम उसपर रीझ गईं, और यह नहीं सोचा कि जूतों के

बिना जो तकलीफ होगी वह इस आनन्द से कितनी ज्यादा होगी ?" सरोज थोड़ी खिसिया गई और बोली, "हाँ, ठीक तो है। यही वजह है जो अब बिल्ली के नाच में मेरा मन नहीं लगता; बल्कि गुस्सा आता है कि इस चंडिका के पीछे मुझे पाँवों का इतना दुःख सहना पड़ रहा है !" मैंने कहा, "उसपर गुस्सा करने से क्या फायदा, सरोज ? उस बेचारी ने तुम्हारा कोई नुकसान नहीं किया। यह दोष तो तुम्हारा अपना ही नहीं है, जो जिस चीज की तुमको जरूरत थी उसको न लेकर खेल की चीज पर नजर डाली ?" उसने कहा, "जरूरत तो मुझे उसकी क्यों नहीं थी—आप ही बताइए, मेरे पास और बिल्ली कौनसी थी ?" इस पर मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा, "सरोज ! मैं यह नहीं कहता कि तुम्हारे पास और बिल्ली थी, इसलिए तुमने उसे फजूल खरीदा। मैं यह भी नहीं कहता कि बिल्ली न सही, और खिलौने तो तुम्हारे पास थे, इसलिए तुम्हें उसका खरीदना वाजिब नहीं था। लेकिन, तुम्हीं बताओ, बिल्ली न लेकर जूते लिए होते तो क्या तुम्हें इतना पछताना पड़ता, जितना अब पछता रही हो, जिसने कि तुम्हारे बिल्ली के मजे को भी किरकिरा कर दिया है ?" उसने सोचा और कहा,

"हाँ, यह बात तो ठीक है । अगर मैंने जूते लिए होते तो, चाहे बिल्ली के नाच का मजा लूटने को न मिलता पर, जूतों के बगैर तकलीफ पाने से जो बुरी हालत हो रही है उससे तो बच ही जाती ।" "और तब", मैंने कहा, "बेचारे बाबूजी और अम्माजी को भी दोष देने की नौबत न आती, क्यों ?" इसपर वह झेंप-सी गई । तब मैंने उसे समझाया, "देखो सरोज, दुनिया में चीजें तो एक-से-एक अच्छी और मनोरंजक मौजूद हैं । पर, तुम्हीं बताओ, हरएक उन सबको कैसे पा सकता है ? पहले तो इतना पैसा ही हरएक के पास नहीं होता; फिर मुफ्त में भी मिल सकें तो, हरएक के मकान में इतनी जगह ही नहीं होती जो मनमानी सभी चीजें रक्खी जा सकें; और हरएक चीज का हरएक के लिए उपयोग भी तो नहीं होता । इसलिए अक्लमन्दी इसीमें है कि जब भी कोई चीज लेनी हो, तो पहले यह सोचो कि हमारी कितनी गुंजाइश है और कितनी उसकी हमें जरूरत है । बेकाम की से काम की और कम जरूरत से ज्यादा जरूरत की चीज हमें पहले लेनी चाहिए । यह भी ध्यान रक्खो कि मन चंचल है, बहुत-सी चीजों की तरफ वह जाता है; इसलिए बुद्धि की लगाम उसपर लगाओ । विवेक से

काम लो। अच्छे-बुरे की तमीज करो। ऐसा न करोगी तो तुम्हें हर बार ऐसे ही पछताना पड़ेगा, जैसे जूते के बजाय बिल्ली लेकर इस बार पछताना पड़ा है।" सरोज यों समझदार लड़की थी और मुझे कुछ मानती भी थी। अतः बात उसके मन में बैठ गई और तभी से उसने अपने बाबूजी और अम्माजी की बुराई करना छोड़ आगे के लिए सावधान रहने का निश्चय कर लिया।

आज शिवरात्रि का रतजगा है। मैं जागरण नहीं करता, पर स्वामी दयानन्द ने इसी रात जागकर बोध प्राप्त किया था, जिससे शिवरात्रि बोधरात्रि भी कहलाने लगी है। उन्होंने चूहे द्वारा शिवजी की मूर्त्ति ले जाई जाने पर विवेक का तत्त्व ढूँढ़ा था, और मैं आज के मेले पर विचार करके इसी परिणाम पर पहुँचा हूँ। तुमसे भी मेरी आकांक्षा है कि तुम भी विवेक के महत्त्व को समझो। जब भी कोई चीज लेने का मौका आए तभी सोचो, कितनी तुम्हारी गुंजाइश है और कितनी तुम्हें उसकी जरूरत है। तुमसे, बल्कि प्रत्येक लड़की से, मेरा यही कहना है कि बेजरूरत से जरूरत की और कम जरूरत से ज्यादा जरूरत की ही चीज लो। यही इस बोधरात्रि पर तुम्हें मेरी सीख

है। आशा है, तुम इसपर ध्यान दोगी और सरोज की ही तरह समझदार बनने की कोशिश करोगी।

शेष कुशल। सबको यथायोग्य। अपने विचार लिखना। अच्छा, स्नेह !

दिल्ली
शिवरात्रि

तुम्हारा भाई
मुकुटबिहारी वर्मा

४

तुम्हारा बर्ताव

प्रिय बहन,

जब-जब होली आती है, मेरे मन में तरह-तरह के विचार उठते हैं। यह तो ठीक है कि हरएक चीज किसी-न-किसी मतलब को लिए हुए होती है, इसलिए इसके साथ भी एकाध श्रेष्ठ भावनाएँ हैं। परन्तु जिस रूप में आज हम इसे मनाने लगे हैं उसे देखकर तो सहसा ग्लानि ही होती है।

अरे, होली के नाम पर यह कैसा हुर्दंग ! रंग और गुलाल की बात तो ठीक, पर राख-कीचड़ और स्याही-कालौंस से गत बनाने का क्या काम ? भेदभाव की अवहेलना, प्रेम-मिलन तो अच्छी बात; लेकिन प्रेम-मिलन के नाम पर मर्यादा का भंग क्यों ? जो भद्र महिलाएँ शर्म-हया की दावेदार हैं, परदे की तान तोड़ती हैं, वे भी आज क्यों इतनी बेशर्म बन गईं कि उन्हें न तो अपने शरीर की सुध है और न जबान की ! देवर-भावज, साली-बहनोई, भावज-ननदोई की होली के रूप में एक-दूसरे के अंगों का किस खुलेपन से स्पर्श

हो रहा है, रंग और गुलाल से सराबोर हो किस स्पष्टता से अंग-प्रत्यंग का प्रदर्शन है, और फिर भी जबान कैसी मस्ती और बेबाकपन से चल रही है और मन उच्छ्वास से बाँसों उछल रहा है ! घरों का यह हाल है, और गली-कूचों में शैतान लड़कों और मर्दों ने आफत मचा रक्खी है। किसी भले आदमी को अछूता नहीं छोड़ते। राख, कीचड़, रंग, गुलाल जो हाथ में आजाय उसीसे गत बना देते हैं। भला यह भी कोई ढंग है ?

कोई आदमी कैसा है, यह उसके उस व्यवहार से आँका जाता है जो कि वह जाहिरा तौर पर दूसरों के साथ करता है। यही कारण है कि होली का हुर्दंग देखकर लोग हमें नाम धरते हैं, हमारे चरित्र पर आक्षेप करते हैं, और एक आदरणीय लेखक ने तो इसे 'गुलामों का त्यौहार' ही बता दिया है। सचमुच इसके रूप में हमें अमर्यादा और निर्लज्जता का ऐसा वीभत्स रूप देखने को मिलता है, जिससे मर्यादाहीन व्यवहार के प्रति हमें नफरत हो ही जानी चाहिए। अतः, मैं चाहता हूँ, इससे तुम इस बात की शिक्षा लो कि तुम ऐसा मर्यादाहीन निर्लज्ज व्यवहार हर्गिज नहीं करोगी।

"इसमें नुकसान क्या है ?" तुम कहोगी, "इससे

तो हँसी-खुशी ही होती है। और हँसने, खुश रहने के लिए खुद आप ही पहले मुझे नहीं लिख चुके हैं ?" हाँ, ठीक है। मैंने तुम्हें हँसी-खुशी से रहने के लिए लिखा था, और अब भी मैं उसपर जोर देता हूँ; परन्तु बहन, विवेक—अच्छे-बुरे की तमीज—के लिए भी तो मैं तुम्हें लिख चुका हूँ। यह ठीक है कि वह मैंने किसी चीज के लेते वक्त खयाल रखने के लिए लिखा था; परन्तु उसकी सिर्फ वहीं इतिश्री नहीं हो जाती, वह तो हमारे सारे जीवन में हमारे साथ रहना चाहिए। जैसे कोई चीज लेते वक्त हमें विवेक की जरूरत है, उसी प्रकार अपने व्यवहार में भी हमें इस बात का विवेक करना ही चाहिए कि किसके साथ हम किस तरह पेश आएँ और किस दशा में कहाँ तक हमारी मर्यादा हो। खुलापन अच्छा, पर मर्यादा के भीतर हो, नंगे रूप में नहीं; अन्यथा अश्लीलता की सीमा में चला जाता है, जो बुरी बात है। हँसी-खुशी भी बहुत जरूरी और अच्छी चीज है, हमें उल्लसित होना ही चाहिए; परन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उसके लिए हम विवेक और मर्यादा को छोड़ दें। ऐसा होने पर तो उसके निरंकुश होकर उच्छृंखलता और अश्लीलता में परिणत हो जाने का भय है। 'सत्यं, शिवं, सुन्दरं' तुमने

शायद सुना होगा। हमें अपने व्यवहार को ऐसा बनाना चाहिए जो सुन्दर हो, और सुन्दर कैसा कि जो शिव अर्थात् कल्याणकर हो; इस प्रकार जो सुन्दर और शिव होगा वही सत्य भी होगा। यही हमें ध्यान रखना चाहिए।

होली पर जैसा हुर्दंग तुम देखती हो, क्या अपने रोजमर्रा के जीवन में ऐसा होते देखा है ? और इसकी हानियाँ ? अच्छा, सुनो ! मेरे बचपन की एक बात है। ग्वालियर रियासत की एक तहसील की घटना है। एक घर में देवर-भावज को होली पर मस्ती सूझी। भावज ने नशीली चीजें बनाईं। खुद भी नशा किया और देवर को भी नशीली चीजें खिलाईं। नशे-नशे में यह किसी को खयाल न रहा कि कितना खा गए, फल यह हुआ कि दूसरे दिन देवर महाशय का तो जनाजा ही निकला—भावज साहबा का क्या हुआ, यह अब याद नहीं रहा। शराब के नशे में बेहाल होनेवालों की जो गत देखी, उसका तो कहना ही क्या। कीचड़ और रंग से दुर्गति के ऐसे-ऐसे दृश्य होते हैं कि उनके स्मरण से ही कँप कँपी आती है। देखा तो अक्सर यहाँ तक गया है कि हुर्दंग के बीच कोई भली स्त्री अचानक उधर आ निकले तो उसपर भी न जाने क्या-क्या

पहला खण्ड

ज्ञान की बातें

कन्या-जीवन

१

हँसो-खेलो, खाओ-पिओ, मस्त रहो !

२

तुम क्या पढ़ोगी ?

३

तुम क्या लोगी ?

४

तुम्हारा बर्ताव

कन्या-जीवन

१

हँसो-खेलो, खाओ-पिओ, मस्त रहो !

प्रिय बहन कान्ति,

तुम्हारी चिट्ठी मिली। यह देखकर कि अब तुम लिखना सीख चली हो और चिट्ठी भेजने लगी हो, बड़ी खुशी हुई। ईश्वर करे कि पढ़ाई-लिखाई की ओर दिन-रात तुम प्रगति करती जाओ और जल्दी एक होशियार व बुद्धिमान लड़की बन जाओ। लेकिन जहाँ पढ़ाई-लिखाई के द्वारा तुम्हारा मन ऊँचा हो, वहाँ मैं चाहूँगा कि और भी कई बातों का तुम खयाल रखो। पढ़ना-लिखना तो जरूर चाहिए, क्योंकि इसके बिना जीवन में आनन्द नहीं आता; लेकिन जिनके बिना जीवन जीवन ही नहीं रहता, उन बातों को भी तुम्हें भूलना नहीं चाहिए।

जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है। तुम्हें अपने आपको सजीव---जिन्दादिल---बनाना चाहिए। पढ़ने-लिखने से उसमें परिपक्वता ही आए, यह न हो कि जो सजीवता

तुम में है उससे भी हाथ धो बैठो। गम्भीरता, जो कि पढ़ने-लिखने से आती है, अच्छी चीज है; लेकिन गम्भीरता का मतलब मायूसी, विरक्तता, मुर्दादिली, नहीं है। गम्भीरता का मतलब है ज्ञान की प्राप्ति और उस ज्ञान-प्राप्ति से होनेवाला विवेक। पढ़ने-लिखने से हमें बात की गहराई पर पहुँचने की प्रेरणा मिलनी चाहिए और उससे फूहड़पन में कमी होनी चाहिए। मूर्खता हममें से निकल जानी चाहिए। यह नहीं कि जीवन ही नीरस बन जाय।

जीवन में सफल होने के लिए जहाँ ज्ञान की आवश्यकता है, वहाँ जीवन को बनाए रखने के लिए हमें कुछ करना भी तो चाहिए। और जीवन के बने रहने का मतलब है दिल का जिन्दा बना रहना, जिसके लिए एक ओर हमारे शरीर का और दूसरी ओर हमारे मन का स्वस्थ होना जरूरी है। जब हमारा शरीर ठीक होगा, उसमें कोई विकार न होगा, और इसी प्रकार हमारा मन भी ठीक रहेगा, तो अपने आप हममें हर्ष, उत्साह व कर्मण्यता की स्फूर्ति होगी और जो भी हमारे सम्पर्क में आएगा वही हमसे इन बातों की प्रेरणा पाएगा।

"लेकिन", तुम कहोगी, "यह अपने बस की बात थोड़े ही है जान-बूझकर भला कौन अपने शरीर और

मन को अस्वस्थ करना चाहेगा ?" यही बात और लोग भी कहते हैं। परन्तु, बहन, मैं कहता हूँ, ऊपर से ऐसा दीखे भले हो कि यह बात हमारे बस की नहीं है पर इसकी बहुत कुछ जिम्मेदारी हमीं पर होती है। जैसा हमारा मन और शरीर होता है उसका बहुत कुछ कारण खुद हम ही होते हैं। अगर हम शुरू से इस बात का ध्यान रक्खें तो पहले तो कोई खराबी ही मुश्किल से पैदा होगी, और अगर किसी प्रकार एक अंग में हुई तो दूसरे के सहारे उसे ठीक करने में बहुत मदद मिलेगी। यों मरना-जीना तो हरएक के साथ लगा ही हुआ है; परन्तु इसका मतलब यह नहीं कि हम जब तक जिएँ तब तक अच्छी तरह न जिएँ। और अच्छी तरह जीने के लिए शरीर और मन का स्वस्थ रहना कुछ कम महत्त्व की बात नहीं है।

जरूर तुम यह पूछोगी, कि शरीर और मन आखिर स्वस्थ रह कैसे सकते हैं ? मैं कहूँगा, तुम या कोई भी इसपर ध्यान दो तो मालूम पड़ेगा, इसके लिए दो बातें जरूरी हैं—(१) शरीर की तत्परता और (२)मन की प्रसन्नता।

शरीर की तत्परता के लिए या तो खूब कामकाज करना चाहिए, या व्यायाम। लेकिन तुम या तुम्हारे जैसी

उम्र वाली लड़कियों के लिए बजाय इनके, यह ठीक होगा कि खेल-कूद में कमी न आने दो। दौड़-धूप, कूद-फाँद, खेल-खिलौनों में तुम कोताही न करो। 'कोई क्या कहेगा ?' 'हम लड़कियाँ हैं। हमें बहुत ऊधमगर्दी नहीं करनी चाहिए; ज्यादा शोरगुल नहीं करना चाहिए।' ऐसे विचार बड़ी उम्र के लिए रहने दो। अभी तो ऐसा समझ लो, मानो खेलने-कूदने, खाने-पीने और निर्द्वन्द्व रहने के लिए ही तुम बनी हो। और बेफिक्र होकर यही तुम्हें करना चाहिए।

मन की प्रसन्नता के लिए यह जरूरी है कि तुम हमेशा खुश रहने की आदत डालो। खुश रहने का अपना स्वभाव बना लोगी तो, कैसी भी कोई स्थिति क्यों न आए, तुम विचलित न होगी। यह आदत इतनी अच्छी है कि जन्मभर तुम्हारे लिए बड़ी फायदेमन्द होगी। यह जरूर है कि इसके लिए तुम्हें कुछ प्रयत्न करना होगा। खुले दिल की हँसी, खिलखिलाकर हँसना, इसके लिए राजमार्ग है। तुम्हें चाहिए कि खूब हँसा करो और दूसरों को भी हँसाया करो। हँसना कितना जरूरी है, यह इसी बात से जाहिर है कि अब इसके द्वारा विविध बीमारियों को दूर करने के चिकित्सालय तक खुलने लगे हैं। अभी हाल की खबर है कि पेरिस

(फ्रांस) के एक डाक्टर ने एक हास्य-चिकित्सालय खोला है, जिसमें रक्तशोषी अजीर्णग्रस्त धनिकों को गुदगुदी देकर पागलों की तरह हँसाया जाता है। ग्रामोफोन में अर्थहीन, निरा बेवकूफी का, रिकार्ड बजाया जाता है, जिसमें बात-बात पर मूर्खतापूर्ण अट्टहास के सिवा और कुछ नहीं होता। फलतः लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते हैं, उनकी आँखों से हँसी के मारे आँसू निकल पड़ते हैं, और धीरे-धीरे वे अपने रोग से भी मुक्त हो जाते हैं।

परन्तु, मैं जानता हूँ, सतत प्रसन्नता और खुला हास्य तब तक असम्भव है जब तक कि हम अपने अन्दर से (१) गुस्सा करने व चिड़चिड़ाने, (२) जलने-कुढ़ने और (३) बात-बेबात चिन्ता करने की आदत न छोड़ दें तथा (४) विचारों की शुद्धता पर पूरा ध्यान न रक्खें। क्रोध व तुनकमिजाजी, जलन-कुढ़न और चिन्ता-व्यथा ऐसे घुन हैं जिनके मौजूद रहते कोई भी पनप नहीं सकता, न खुश रह सकता है, और न हँस ही सकता है। जहाँ एक बार कोई इनके चंगुल में फँसा नहीं कि फिर ज्यादा-से-ज्यादा ही फँसता और अपने को चौपट करता जाता है। इसलिए तुम्हें, बल्कि प्रत्येक लड़की को, इस बात की पूरी कोशिश करनी चाहिए कि

इन राक्षसों के चंगुल से सदा सावधान रहे—अव्वल तो इनके पंजे में फँसे ही नहीं, और किसी कारणवश फँस गई हो तो जल्दी-से-जल्दी छूटने की कोशिश करे। यह तय है कि अपने विचारों को शुद्ध रक्खा जाय और अन्दर-बाहर से खिला-खुला रहा जाय, तो इन राक्षसों के चंगुल में फँसने की शक्यता अपने आप थोड़ी कम हो जाती है। अतः जहाँ एक ओर पढ़ने-लिखने में तुम कोताही न करो, वहाँ साथ-साथ मेरा तुमसे यह भी कहना है कि अपनी जिन्दगी से भी तुम बेखबर न रहो। तुम बुद्धिमान बनो, पर साथ ही सजीव भी बनी रहो।

वसन्त के खिलने-खुलने के इस त्यौहार पर मेरी तुमसे यही आकांक्षा है कि तुम भी ऐसी ही खिली-खुली और प्रसन्न रहो। हँसो-खेलो, खाओ-पिओ और मस्त रहो। इसीमें तुम्हारे भविष्य का निर्माण छिपा हुआ है, इसलिए इसीमें तुम्हारी भलाई है। आशा है, तुम इसपर ध्यान दोगी।

लिखना तो और भी बहुतसी बातें चाहता था; लेकिन अब फिर। अभी तो यही बहुत लम्बी चिट्ठी हो गई। अच्छा, स्नेह! और सबको यथायोग्य।

दिल्ली
वसन्त पंचमी

तुम्हारा भाई
मुकुटबिहारी वर्मा

२

तुम क्या पढ़ोगी ?

प्रिय बहन,

आज ही एक चिट्ठी तुम्हें लिख चुका हूँ। वही इतनी बढ़ गई थी कि आखिर इच्छा न होते हुए भी खत्म की और सोचा कि बाकी फिर कभी किसी दूसरी चिट्ठी में लिखूँगा। लेकिन विचारों ने मेरे दिमाग को इतना घेर रक्खा है कि उन्हें जब तक लिख न दूँगा, मुझे चैन नहीं पड़ेगा। इधर उस चिट्ठी को तुम्हारी भाभी ने देखा तो कहा, "जहाँ खेल-कूद पर इतना जोर दिया वहाँ पढ़ाई-लिखाई पर कुछ न लिखने से चिट्ठी एकांगी हो गई है, और यह भय है कि इसका असर यह न हो कि पढ़ाई-लिखाई को नमस्कार ही कर लिया जाय। बीबी रानी को कोई कुछ कहेगा तो तुम्हारा पत्र उसे खामोश करने का सहारा बनाया जायगा।" इससे इन विचारों को भी लिख डालने की इच्छा और प्रबल हो उठी है। फिर बसन्त सरस्वती-दिवस भी तो है। बंगाली भाई खास तौर से इस दिन सरस्वती-पूजा करते हैं। अतः शिक्षा के बारे में

भी कुछ-न-कुछ लिखकर ही रहूँगा, फिर चाहे उसे भेजूँ एकाध दिन बाद ही—जितने में कि तुम पहली चिट्ठी को अच्छी तरह पढ़-समझ लो। अस्तु।

पढ़ाई-लिखाई की बात करते ही जो बात सबसे पहले मन में उठती है वह यह है कि तुम सच्ची शिक्षा प्राप्त करो, उसके आडम्बर में मत फँसो। आजकल आम तौर पर यह देखा जाता है कि सच्चा ज्ञान जितना प्राप्त नहीं किया जाता उतना, शिक्षा के मार्ग पर अग्रसर होते हुए, लोग—स्त्री-पुरुष दोनों—दिखावटी होते जा रहे हैं। पढ़ने का मतलब मानो फैशनपरस्ती हो रहा है, और ऐंठ उसका दूसरा रूप है। यही कारण है कि शिक्षा प्राप्त करके पुरुष अपने पुराने धन्धों को हीन समझने लगते हैं, और स्त्रियों के लिए घर-गृहस्थी मानो बला हो जाती है। इस प्रकार शिक्षा से जहाँ उनमें अपने काम को अधिक अच्छाई के साथ करने की बान पड़नी चाहिए, उलटे उसके प्रति नफरत के भाव धारण करके वे उसे बिलकुल भूल ही जाते हैं और क्लर्की, टाइपगीरी आदि के शहरी काम-काजों में अपनी 'साहबी' कायम रखने की कोशिश करते हैं। पर इन धन्धों में काम करने वालों की संख्या आखिर सीमित ही हो सकती है, इसलिए बाकी लोगों को बेकारी और

आवारागर्दी का जीवन बिताते हुए ही रहना पड़ता है। इसका नतीजा जो भी हो सकता है वह आज हम सबके सामने है।

शिक्षा का मतलब है, अपना विकास—अपनी बौद्धिक और मानसिक शक्ति को इतना बढ़ाना कि जिससे दुनिया में अपने कर्त्तव्य-कर्मों को बखूबी पहचाना और उनका पालन किया जा सके। स्त्री या पुरुष हरएक को समझना चाहिए कि दुनिया में वह क्यों आया है, उस उद्देश्य की पूर्त्ति उसे कैसे करनी चाहिए, किस तरह उसे अपना जीवन-यापन करना चाहिए, और किसके साथ किस तरह रहना-बरतना चाहिए। कर्त्तव्य का भान होने से आदमी में जिम्मेदारी आती है। जिम्मेदारी आने पर अपने हरएक काम और व्यवहार के लिए आदमी को सोचना पड़ता है, अपने हरएक कदम को दुनिया में सम्हाल-सम्हाल कर आगे बढ़ाना पड़ता है; मतलब यह कि उसे संजीदा और दुनियादार, यानी व्यवहारकुशल, बनना होता है। और, दुनियादार कौन अच्छा होता है ? शिक्षा से हमें इसका विवेक होता है। शिक्षा हमें यह बताती है कि दुनियादारी दो तरह की होती है—एक तो सदा दूसरे को बेवकूफ बनाकर, नुकसान पहुँचाकर, या जिस तरह

भी हो उस तरह, अपना स्वार्थ सिद्ध करने को तैयार रहना; और दूसरे अपने जीवन को अधिक-से-अधिक शुद्ध और ऊँचा बनाते हुए, अपने व्यवहार को विनम्र और सर्वप्रिय बनाते हुए, सबकी भलाई के लिए प्रयत्न करते हुए अपनी भी भलाई करना। शिक्षा हमें यह निर्णय कराती है कि इनमें से किसे हम ग्रहण करें और कैसा हमारा व्यवहार हो। मतलब यह कि शिक्षा-प्राप्ति से हमें अपने व्यवहार को अधिक-से-अधिक विनम्र, वाणी को अधिक-से-अधिक संयत और मधुर तथा मन को अधिक-से-अधिक शुद्ध करने की प्रेरणा मिलनी चाहिए।

जब हमारा मन शुद्ध होगा, हमारी विवेक-बुद्धि जाग्रत होगी, तो अपने कर्त्तव्यों की पूर्ति का भी हमें खयाल आयगा। तब दूसरों की निन्दा-भर्त्सना करने की फिक्र छोड़कर अपने खुद के फर्ज को अधिक-से-अधिक अच्छाई के साथ अदा करने की हमें फिक्र होगी। और तब, जैसे किसान का लड़का ऊँची शिक्षा पाकर खेती से नफरत करने के बजाय उसे उन्नत करने का प्रयत्न करेगा, वैसे ही, प्रत्येक स्त्री अपने घरेलू धन्धों को हिकारत की नजर देखना छोड़कर उन्हें अच्छाई और सुघड़ता के साथ सम्पन्न करने का

ही प्रयत्न करेगी।

स्त्री और पुरुष, प्रकृति के ही दो रूप हैं। दोनों प्रकृति के ही अंश होने के कारण, सृष्टि में कुछ काम तो दोनों ही के लिए एक-से हैं। इसलिए, जहाँ तक शिक्षा या ज्ञान का सम्बन्ध है, दोनों को सब विषयों का अधिक-से-अधिक ज्ञान प्राप्त करने की अवश्य कोशिश करनी चाहिए। परन्तु प्रकृति के वे एक-दूसरे से भिन्न रूप हैं, इसलिए उनके कुछ परस्पर भिन्न कर्त्तव्य-कर्म भी हैं। क्या यह ठीक नहीं है कि जैसे किसान को और-और ज्ञान के साथ अपने खेती के धन्धे का और लुहार को अपने लुहारी धन्धे का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करना चाहिए वैसे ही स्त्रियाँ भी अपने सम्बन्ध का––स्त्रीत्व-सम्बन्धी––ज्ञान खास तौर से प्राप्त करें ?

"यह तो ठीक, पर," तुम पूछोगी, "स्त्रियों का खास विषय क्या है ? यह भी तो बताओ।" हाँ, यह मैं बताऊँगा। देखो, पुरुष और स्त्री को जहाँ सृष्टि के दो रूप माना गया है वहाँ यह भी माना गया है कि एक (पुरुष) बाहर का राजा है और दूसरी (स्त्री) घर की रानी। मतलब यह कि एक की प्रवृत्ति बाहरी है और दूसरे की घरेलू। और साफ कहूँ तो, एक का

काम है बाहर की यानी कमाने की फिक्र करना, और दूसरे का काम है उस कमाई का सदुपयोग करना, यानी घर को सम्हालना और गृहस्थी को ढंग से चलाना। इसलिए जहाँ पुरुष की शिक्षा का एक उद्देश्य धनार्जन यानी कमाई होना चाहिए, वहाँ स्त्री की शिक्षा का मुख्य लक्ष्य गार्हस्थ्य एवं मातृत्व होना ही चाहिए। उसे खाना बनाने, ढंग से खिलाने-पिलाने, स्वास्थ्य-सफाई के नियमों, छोटे-बड़ों की प्रसन्नता प्राप्त करने आदि की अमली बातें अवश्य जाननी चाहिएँ। अपनी और घर के छोटे-बड़ों की प्रसन्नता के लिए संगीत (गाना-बजाना), नृत्य और चित्रकारी व शिल्प-कला का भी उसे ज्ञान एवं अभ्यास होना चाहिए। साथ ही, उसे यह भी ज्ञान होना चाहिए कि इनके किस रूप को किसके सामने प्रकट करना चाहिए और किसके सामने नहीं तथा किस रूप को हानिकारक समझकर त्यागना चाहिए।

एक बात और। अभी तुम छोटी हो, इसलिए तुम कल्पना भी नहीं कर सकतीं—और, मैं भी इस दुविधा में हूँ कि यह बात तुम्हें लिखना उचित भी है या नहीं—पर मातृत्व सभी स्त्रियों का प्रधान कर्त्तव्य है। हरएक स्त्री, फिर वह चाहे अभी छोटी ही क्यों

न हो, संभावित माता है। इसलिए, स्त्री-शिक्षा ऐसी होनी चाहिए कि शुरूआत से ही प्रत्येक लड़की को अपने इस विशिष्ट कर्त्तव्य का भान हो और वह अच्छाई के साथ इस कर्त्तव्य-पालन की तैयारी करे। सर्वसामान्य ज्ञान के साथ-साथ अपने इस विशिष्ट विषय का ज्ञान हरएक लड़की को अवश्य प्राप्त करना चाहिए। इसके लिए प्रजननशास्त्र तथा बाद के कर्त्तव्य यानी शिशु-पालन की शिक्षा उन्हें मिलनी चाहिए। ऐसा होने पर ही सन्तान का यथायोग्य पालन-पोषण हो सकेगा और वे वैसी बन सकेंगी जैसी कि उन्हें होना चाहिए।

मैं नहीं जानता कि स्कूल में जो शिक्षा तुम पा रही हो वह इन सब बातों की कहाँ तक पूर्ति करती है। पर आजकल की पाठ्य-प्रणाली का जो थोड़ा-सा ज्ञान मुझे है उसपर से मेरा ऐसा खयाल है कि स्त्री-शिक्षा के इन सब पहलुओं पर उसमें ध्यान नहीं दिया जाता। इसलिए, मैं चाहता हूँ, इसकी पूर्त्ति तुम घर में करो। तुम्हें स्कूली किताबों के अलावा भी साहित्य पढ़ना तथा बड़ी-बूढ़ियों की बातों को कान लगाकर सुनते रहना चाहिए। मैं जानता हूँ कि अधिकांश लड़कियों को बड़ी-बूढ़ियों की बातें वैसे ही नहीं सुहातीं जैसे अधिकांश लड़कों को अपने बुजुर्गों की बातें पसन्द

नहीं होतीं। लेकिन शिक्षा से जो विनम्रता आनी चाहिए उसका तकाजा है कि हम अपने से बड़े सभी की बातों को ध्यान के साथ सुनें और शिक्षा से जो विवेक हमें प्राप्त होता है उसकी कसौटी पर उन्हें कसकर निर्णय करें कि उनमें कौनसी बात तो ग्रहण की जाय और कौनसी नहीं। निस्सन्देह हमारा भाव जिज्ञासा का हो, न कि अवज्ञा का, नहीं तो विवेक-बुद्धि जरा काम न आयगी और हरएक लड़की सब बातों में बुरा-ही-बुरा देखेगी।

साहित्य जो तुम पढ़ो उसमें भी विवेक-बुद्धि और जिज्ञासा-भाव तो रहना ही चाहिए। इस भाव से पढ़ने पर एक बार बुरी चीज का भी तुमपर बुरा असर न हो सकेगा, जब कि ऐसा न होने पर तुम्हारा कोमल हृदय सहज ही बुराई की ओर प्रवृत्त हो सकता है। शृंगाररस की कविताओं और जासूसी व प्रेमाकर्षण के उपन्यास-कहानियों से बहुत-से स्त्री-पुरुषों को चौपट होते देखा गया है; इसलिए इन्हें पढ़ते समय खास तौर से सावधान रहने की जरूरत है। वैसे अच्छा तो यह है कि सभी उपन्यास-कहानियाँ और कविताएँ पढ़ते समय थोड़ा सावधान रहा जाय। उनसे मनोरंजन तो किया जाय, पर मन को दूषित न होने देना चाहिए।

आवाजें कसी जाती हैं और कोई-न-कोई उसपर रंग फेंक ही देते हैं, जिससे उसके कपड़े गीले होकर अंग-प्रत्यंग चमकने लगता है और वह शर्म के मारे पानी-पानी हो जाती है। क्या ये बातें अच्छी हैं ?

इनसे तात्कालिक आनन्द चाहे मिलता हो, पर वह स्थायी नहीं होता इसलिए सत्य नहीं है। और शिव तो वह होता ही नहीं, इसलिए सुन्दर भी नहीं है। इन्हें देखकर तो हरएक भले आदमी को शर्म से गड़ जाना चाहिए।

अतः होली के इस अवसर पर तुम अपने मन में सोच लो कि किस व्यक्ति के साथ तुम्हें कैसे बरतना चाहिए और किसके साथ किस तरह की व कहाँ तक छूट लेनी चाहिए। बड़ों का आदर और उनके साथ विनयसूचक व्यवहार होना ही चाहिए। बराबरी वालों के साथ खुला व्यवहार हो, पर शिष्टतायुक्त। बहुत-से लोग बात-बात में 'अरे यार' की टाँग तोड़ते हैं, 'साले' 'सुसरे' तथा गन्दे अपशब्दों का व्यवहार करते हैं, तू-तड़ाक बघारते हैं। बहुत-सी स्त्रियाँ व लड़कियाँ भी ऐसे ही कुछ शब्दों का खुला व्यवहार करती हैं। ये बातें अच्छी नहीं हैं। कभी-कभी तो इनसे बड़ा अनर्थ हो जाता है। वैसे भी जबान तो बिगड़ती ही है।

अतः इनसे तो बिलकुल ही बचना चाहिए। छोटों के साथ हमारा व्यवहार स्नेहपूर्ण हो। यह भी ध्यान रहे कि पुरुष के साथ हमारा व्यवहार और तरह का होता है और स्त्री के साथ और तरह का। हम अपनी माँ के साथ जितना खुल जाते हैं उतना पिता के साथ कभी नहीं खुल पाते। बहन से जिस खुले और शुद्ध भाव से मिलते-जुलते हैं, वैसे पत्नी से नहीं मिलते-जुलते। बहन और बेटी में भी अन्तर रहता ही है। इन बातों को तुम हृदयंगम करो और अपना स्वभाव ऐसा बनाओ जो हरएक तुमसे खुश हो सके। सबके मुँह तुम्हारे सुस्वभाव और सद्व्यवहार की प्रशंसा हो।

"यह हो कैसे सकता है ?" तुम पूछोगी। इसके लिए चिट्ठी में, थोड़े में, मैं सिर्फ यही लिख सकता हूँ कि तुम्हें अपनी विवेक-बुद्धि को अभ्यस्त करना होगा और साथ ही अपने मन को तैयार करना पड़ेगा। किताबों और दुनिया से तुम्हें जो सबक मिल रहा है उसपर बारीक नज़र रक्खो। जिसका जो व्यवहार अपनी बुद्धि के द्वारा तुम्हें उचित और गृहणीय प्रतीत हो उसे अपनालो, और जो अगृहणीय प्रतीत हो उससे बचने का निश्चय व प्रयत्न करो। जिसकी लोग तारीफ करते हों, जिससे सब खुश दीखें, उसके उन

गुणों पर ध्यान दो और उन्हें अपने में भी लाने की कोशिश करो। सब बुरी बातों और बुरी आदतों से बचने की कोशिश करो और हरएक अच्छी बात को अपनाने में जुट जाओ।

एक बात का पूरा ध्यान रक्खो। ऊपर से तुम्हारा जो व्यवहार हो, वह हो अन्दर के हृदय के साथ। यह नहीं कि 'मुँह में राम नाम और बगल में छुरी' हो। ऊपर कुछ हो और अन्दर कुछ और, यह बहुत बुरी बात है। इससे कुछ समय के लिए दूसरों को हम चाहे धोखे में डाल लें, पर स्थायी रूप से अपना नुकसान ही करते हैं। याद रक्खो कि धोखा सदा नहीं चला करता, और कुछ समय बाद जब खुलता है तो ऐसा आदमी दूसरों की नजर में बहुत गिर जाता है। अतः तुम्हें ऊपरी व्यवहार के साथ अपने मन को भी वैसा ही बनाते जाना चाहिए। इसके लिए तुम्हें अपने मन को शुद्ध और सरल बनाना चाहिए, जिसके लिए मैं बसन्त के अपने पत्र में तुम्हें लिख भी चुका हूँ। उम्र की बढ़ती, अक्ल की तरक्की, शिक्षा की प्रगति और अनुभव की अधिकता के साथ तुम्हें उसको पुष्ट करने की ही जरूरत है। उसमें शिक्षा व बुद्धि अर्थात् विवेक का पुट देती जाओ, यह नहीं कि उसे

छोड़ती जाओ। खुश रहने, दूसरों के बारे में बुरे खयाल न रखने, जलने-कुढ़ने से बचने, गुस्से व चिड़-चिड़ाहट को दूर रखने, बात-बेबात की चिन्ता न करने की तो सारी उम्र जरूरत है। बड़े होते जाने और शिक्षा प्राप्त करते जाने का तो सिर्फ यही मतलब है कि इन बातों का और भी ज्यादा और अच्छे रूप में विकास किया जाय तथा फूहड़पन को छोड़कर संस्कार-वान बनते जाएँ, सभ्य यानी तहजीबदार बनें। मैं चाहता हूँ कि तुम इस बात का पूरा ध्यान रक्खो कि गुस्सा, जलन-कुढ़न, चिन्ता-व्यथा आदि बुरी बातें तुम पर कभी हावी न हों और तुम सदा प्रसन्न व हँसमुख रहो। तभी तुम दूसरों के साथ शुद्ध-बुद्ध रूप से सद्व्यवहार कर सकोगी।

एक बात और। सद्व्यवहार के साथ सामयिकता का भी ध्यान रखना जरूरी है। काल व परिस्थिति का खयाल रखकर किया हुआ व्यवहार ही शोभनीय होता है। हँसना अच्छा है, पर क्या किसी की मृत्यु के वक्त हँसा जा सकता है? इसी तरह, खुशी के मौके पर क्या रोना ठीक होगा? यह सोचो और यह समझने का प्रयत्न करो कि किसके साथ और कब कैसा व्यवहार तुम्हें करना चाहिए, क्या तुम्हारी

मर्यादाएँ हैं, किससे कहाँ तक तुम छूट ले सकती हो, और तुम्हारे प्रेम का किसके साथ कैसा रूप व प्रदर्शन होना चाहिए। बुरे से तुम बचो और अच्छे को ग्रहण करो। ऊपर से अपवित्र दीखनेवाली पवित्र होली पर यही तुम्हें मेरी सीख है। आशा है, तुम इसपर खूब विचार करोगी और जो शिक्षा तुम पा रही हो उसके सहारे अपने बर्ताव को ऐसा शिष्ट, प्रेममय, शुद्ध और उपयुक्त बनाओगी कि दुश्मन भी एक बार तुम्हारी तारीफ ही करें।

अच्छा, स्नेह ! सबको यथायोग्य।

दिल्ली
होलिकोत्सव

तुम्हारा भाई
मुकुटबिहारी वर्मा

दूसरा खण्ड

विवाह की भेंट

वधू-जीवन

१

बहन सरला को

२

बहन तारावती को

वधू-जीवन

१

बहन सरला को

प्रिय बहन,

आज तुम्हारा विवाह है। विवाह के द्वारा तुम एक ऐसे जीवन में प्रवेश कर रही हो, जो अब तक के तुम्हारे जीवन से अन्यथा होगा। अभीतक तुम खेल-कूद, हँसी-खुशी के निर्द्वन्द्व अनुत्तरदायी जीवन में रही हो। परन्तु अब जिस जीवन में तुम प्रवेश कर रही हो वह उमंगों का, प्रेम का, साधना का ऐसा जीवन है जिसमें उन्हें मूर्त्त रूप दिया जाता है। संसार में अब तक तुमने खेलने-कूदने, हँसने और निर्द्वन्द्व रहने का अभिनय किया है, अब तुम्हें दूसरों को इसका मौका देने और इसके लिए तैयार करने का काम करना होगा। तुम्हारे बनने--जीवन को बनाने--की समाप्ति हो गई, यह तो मैं नहीं कहता; परन्तु अब, उसके साथ-साथ, तुम बनाने वाली भी हो रही हो। इसलिए, कर्त्तव्य का बोझ तुमपर लद रहा है। मतलब यह है कि निर्द्वन्द्व मुक्त जीवन से अब तुम कर्त्तव्य-परायण जीवन में प्रवेश कर रही हो। अभीतक दूसरे तुम्हारी

फिक्र करते थे; अब वधू और गृहिणी के रूप में तुम्हें अपने पति तथा घर-बाहर के अन्य व्यक्तियों एवं अपने कर्त्तव्य-कर्मों का यथोचित ध्यान रखना होगा। इस प्रकार जहाँ तुम विवाह-पूर्व की अपनी इस चाव को पूरा करोगी कि 'पति' नामधारी व्यक्ति कैसा होता है कि जिसके लिए स्त्रियों के सब-कुछ निछावर कर देने की ज्वलन्त कथाओं से हमारा प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य भरा पड़ा है, सास-ससुर, देवर-जेठ, ननद-जेठानी की प्रियपात्र बनने और सबको खुश कर पति-गृह में गृहराज्ञी बनने की महत्वाकांक्षा करोगी, वहाँ साथ-साथ पद-पद पर सतत रूप में तुम्हें यह भी ध्यान रखना होगा कि यह सब सम्भव तभी होगा जब तुम इनकी कोरी कल्पना ही नहीं करोगी बल्कि अपनी समस्त शक्ति और तैयारी के साथ इनके लिए प्रयत्न करोगी। और जब तुम इनके लिए प्रयत्न करने का विचार करोगी तो, मैं यह बताकर कोई बड़ा रहस्योद्घाटन नहीं कर रहा हूँ कि, तुम देखोगी, वहीं से तुम्हारा कर्त्तव्य-जीवन प्रारम्भ होगा। मतलब यह कि जागरूक रहकर अपने कर्त्तव्यों की पूर्त्ति करती जाओगी तभी तुम्हें विवाहित जीवन का वह सुखद और सुन्दर रूप उपलब्ध होगा जिसकी कि तुम कामना

करती हो, या जिसकी प्रत्येक युवती को कामना करनी चाहिए।

विवाह क्या है ?

जब हम विवाहित जीवन की बात करते हैं, तब सबसे पहले तो हमें यह समझना चाहिए कि विवाह है क्या ? जैसे मैंने, विवाह पर लिखते हुए, अपनी किताब 'स्त्री-समस्या' में लिखा है—"दो-चार दिन गा-बजाकर, हा-हू करके, लीक पीटकर प्रचलित रस्मों को अदा कर देना विवाह थोड़े ही है; विवाह तो, वस्तुतः, दो आत्माओं के—पुरुष और स्त्री के—परस्पर आकर्षणों का एकीकरण है, दो अर्द्धांगों का समीकरण है, और है उनकी अपूर्णताओं का परस्पर पूरण। शरीर-मन्दिर में बैठी हुई दो आत्माएँ जब एक-दूसरे का आवाहन करती हैं, तब विवाह दौड़कर उन्हें मिला देता है।" और, डा० राधाकमल मुकर्जी के लेखानुसार, "भारतवर्ष में वन-रानी और गृह-स्वामिनी के रूप में कार्य-संचालन और उसके फलों के उपभोग का जो कार्य स्त्री करती है, वह सभ्यता का निर्माण और पोषण करता है। पत्नी और सहधर्मिणी के रूप में वह सभ्यता को मधुर, सुन्दर और आनन्दप्रद बनाती है और जाति की माता के रूप में सुन्दरतर फलों को

वह प्रदान करती है। बच्चे के रूप में और उसके द्वारा वह मानवता के लिए अपने आपको बलिदान कर देती है।"

इस प्रकार विवाहित जीवन का उद्देश्य हुआ सभ्यता का निर्माण और पोषण। इससे हमारे—और समष्टि रूप में सृष्टि के—जीवन में माधुर्य, सौन्दर्य और आनन्द आना चाहिए और उससे उत्फुल्ल होकर मानवता के लिए हमें सुन्दरतर फलों की सृष्टि करनी चाहिए। पुरुष-स्त्री के एकीकरण से जहाँ विवाह पारस्परिक आदान-प्रदान का संयोग उपस्थित करता है, वहाँ दो के सम्मिलन से एक-दूसरे की अपूर्णताओं की पूर्ति करके सच्चिदानन्द (सत्-चित्-आनन्द) की प्राप्ति भी उसका उद्देश्य है। अतएव यह जीवन का सर्वोच्च आदर्श चाहे न हो, किन्तु जीवन की स्वाभाविक स्थिति अवश्य है। फिर विवाह हमें प्रकृति माता के निकट पहुँचाता और मितव्ययी भी बनाता है; इसलिए, स्वयं जीवन की पूर्णता न होकर भी, यह हमें जीवन की पूर्णता की ओर अग्रसर करता है।

विवाह की जिम्मेदारी

विवाह का जब इतना महत्त्व है, तब उसकी महान् जिम्मेदारी की हम किस प्रकार उपेक्षा कर सकते

है ? वैसे आम तौर पर होता यह है कि युवक-युवती दोनों जब विवाह के स्वप्न देखते हैं तो इतनी ऊँची बातें नहीं सोचते। जहाँ युवक सोचते हैं कि हमें एक गुड़िया-सी बहू मिलेगी, जिसके साथ हम खुले-छिपे मनचाही छेड़छाड़ कर सकेंगे, वहाँ युवती सोचती है—"मैं ससुराल जाऊँगी, जो मेरा 'अपना घर' होगा। वहाँ मुझे अपने समवयस्क पुरुष (पति) मिलेगा, जिसके साथ मैं अपनी उन उमंगों की पूर्त्ति करूँगी जिन्हें मैं विवाहित स्त्रियों में देखती-सुनती हूँ। विवाह में मुझे तरह-तरह के जेवर-कपड़े मिलेंगे, जिनसे मैं अपना शृंगार करूँगी और इठलाऊँगी।" इत्यादि। उमंगों के इस जीवन में बच्चों की हविस तो बहुत नहीं होती, पर ऐसे जीवन के अवश्यम्भावी परिणामस्वरूप वे भी जल्दी ही आते हैं। लेकिन क्या यही विवाह है? क्या यही विवाह का अर्थ और इति है?

हम गम्भीरता से इसपर विचार करें तो मालूम होगा कि ऐसा करके हम बहुत भारी गलती कर रहे हैं और इसी का नतीजा है जो आज हमारे जीवन में उच्चता, पवित्रता एवं आह्लाद नहीं है। विवाह की जिम्मेदारी को हम महसूस नहीं करते,

इसलिए उसमें अमर्यादा और स्वच्छन्दता का रेल-पेल हो रहा है और आज विवाह-सूत्र में बँधे स्त्री-पुरुषों का अमर्याद स्वच्छन्द जीवन ही विवाह का दृश्य रूप बन रहा है। मानों विवाह को भोग-विलास का खुला लाइसेंस बना लिया गया है! लेकिन, प्रकृति तो इसको माफ नहीं कर सकती न ? इसीलिए हमारे अन्दर—हमारे समाज में—आज जड़ता, निरुत्साह, विषाद, क्षोभ और पुरुषार्थहीनता का साम्राज्य हो रहा है। कहने को तो हम मनुष्य ही हैं, पर वस्तुतः न जाने क्या हो गए हैं। इसीलिए मानसिक और आध्यात्मिक दासता ने भी आज हमपर अधिकार कर रक्खा है। मैं चाहता हूँ, तुम ऐसी न बनो, और विवाह के स्वर्ण-द्वार में प्रवेश करते समय यह भी ध्यान रक्खो कि यह है तो फूल पर है गुलाब का, जिसमें सौन्दर्य और सुगन्ध के साथ-साथ काँटे भी हैं। उन काँटों का ध्यान रखकर सावधानी से हम फूल का उपयोग करें तभी उससे निर्बाध आनन्द प्राप्त होगा, नहीं तो काँटा चुभकर सारा मजा किर-किरा कर देगा।

विवाह तो, वस्तुतः, संसार-यात्रा के लिए मानव-मस्तिष्क की उपज है। अकेला आदमी कोई काम सम्पूर्णता से नहीं कर सकता, एक-दूसरे के सहयोग के

बिना दुनिया में चलना और जीवन-संघर्ष में टिकना बड़ा मुश्किल है; इसीलिए, मानो, विवाह के रूप में स्त्री-पुरुष का संगम किया गया है। इस संगम का ही फल सन्तानोत्पत्ति रक्खा गया है; किन्तु यह ध्यान रहे कि वह अन्तिम लक्ष्य है, आरम्भिक नहीं, और समुचित रूप में वह तभी पूरा हो सकता है जबकि पहले हम उसकी पूरी-पूरी तैयारी करें। सन्तति तो हमारी--विवाहित स्त्री-पुरुष की--सबसे बड़ी देन है, जो हमें दुनिया को देनी चाहिए। परन्तु चूँकि वह हमारी सबसे बड़ी देन है--ऐसी देन कि जिसपर भविष्य में सृष्टि का अस्तित्व निर्भर है, इसलिए उसके निमित्त हमपर जिम्मेदारियाँ भी बहुत हैं। हम जब अपने जीवन को ऊँचा और पवित्र रक्खेंगे, सद्गुणों को उसमें असली रूप देंगे, और साथ-साथ जब हमारा विवाहित जीवन स्वस्थ, शान्त, सुखी होगा, तभी हमारी 'देन' ऐसी हो सकेगी जो दुनिया को ऊँचा उठाए--या, कम-से-कम नीचे न ले जाए। अतः विवाह से हममें यह उत्तर-दायित्व आना चाहिए कि उस 'देन' को देने के लिए हम अपने जीवन को ऊँचा बनाने की तैयारी करें; और विवाह से साथी के अभाव की जो पूर्ति हुई है उससे हम स्वयं तो आनन्दोपभोग करें ही, साथ-साथ अपने

समाज और राष्ट्र एवं जगत् को भी आनन्दपूर्ण बनाएँ। इस प्रकार विवाहित जीवन आनन्द का जीवन तो है, पर यह ध्यान रहे कि जिम्मेदारी और कर्त्तव्य का समुचित पालन करके ही सच्चा आनन्द पाया जा सकता है। ऐसा न करते हुए जो आनन्द पाने का दावा करते है, वह आनन्द नहीं आनन्द का आभास मात्र होता है—कभी-कभी तो वह विषय-भोग से अधिक कुछ नहीं होता, जिसका दुष्परिणाम आगे-पीछे सामने आता ही है और तब हमारे सारे जीवन को दुःखी-निरुत्साह बना देता है।

यों विवाह की जिम्मेदारियाँ स्त्री-पुरुष दोनों ही के लिए हैं और विवाह को सफल बनाने के लिए दोनों ही का पूर्ण सहयोग—अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का पालन—आवश्यक है; परन्तु जब कि मैं तुम्हें—एक स्त्री को—उसके बारे में लिख रहा हूँ, तब उसमें स्त्री की जो जिम्मेदारी है उसी पर प्रकाश डालना ठीक होगा। वैसे भी इस सम्बन्ध में पुरुष से स्त्री की जिम्मेदारी ज्यादा है, ऐसा इस विषय के अनुभवी लोगों का कहना है। अतः, मैं कहूँगा, स्त्रियों को पूरी तरह तैयार होकर विवाहित जीवन में प्रवेश करना चाहिए और विवाहित जीवन को शुरूआत से ही फूँक-फूँककर

कदम रखना चाहिए।

मोटे तौर पर, तीन तरह की जिम्मेदारी प्रत्येक नववधू के सामने होती है--(१) पति के प्रति; (२) घर-गृहस्थी के प्रति; और (३) दुनिया के प्रति।

पति के प्रति

पति को हमारे यहाँ स्त्री का सर्वस्व, प्राणेश्वर, यहाँतक कि परमेश्वर भी माना गया है। इसलिए विवाहित स्त्री का सर्वप्रथम कर्त्तव्य अपने पति के प्रति है। प्रत्येक नववधू को चाहिए कि पति-गृह में प्रवेश करते समय इस बात को ध्यान में रक्खे और अपने विवाहित जीवन के पहले दिन से लेकर अन्त समय तक इस बात में बड़ी जागरूक रहे कि उसका कोई काम या व्यवहार ऐसा न हो जिससे उसके पति के यश पर बट्टा लगे, पति असत् मार्ग की ओर प्रेरित हो, या उसे रुष्ट-अप्रसन्न होने का कोई वाजिब कारण मिले। मैं यह नहीं मानता कि स्त्रियाँ अपने को पति की जरखरीद दासी समझकर तदनुसार अपना आचरण करें, लेकिन कुल मिलाकर पति-पत्नी दोनों में से कोई एक, दूसरे एक से, थोड़ा-बहुत प्रमुख या बड़ा न माना जायगा तो कैसे काम चलेगा? और देशों की बात तो मैं नहीं जानता, पर हमारे यहाँ आमतौर पर

पत्नियों ने पतियों को अपने से बड़ा माना है। अतः पत्नी के रूप में स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह अपने पति की इच्छा-अनिच्छा, प्रसन्नता-अप्रसन्नता, रुचि-अरुचि का ध्यान रक्खे। और चूँकि स्त्री गृह-स्वामिनी है, उस घर की अधिष्ठात्री है जहाँ कि दुनिया की कशमकश से थके-माँदे पुरुष को शान्तिपूर्ण आश्रय मिलना चाहिए, इसलिए स्त्री को अपना स्वभाव और आचरण ऐसा बनाना चाहिए कि उसके पति को उसके पास सम्पूर्ण शान्ति, राहत और आनन्द की प्राप्ति हो, जिससे जब वह पुनः कशमकश की दुनिया में, या यह कहना चाहिए कि दुनिया की कशमकश में, प्रवेश करे तो द्विगुणित उत्साह से प्रेरित हो।

मैं समझता हूँ, कोई भी भली स्त्री इससे अन्यथा नहीं चाहती। हमारे यहाँ विविध व्रत-त्यौहारों का जो विधान है और स्त्रियाँ जिस निष्ठा व श्रद्धा के साथ उन्हें मनाती हैं, उससे प्रतीत होता है कि हमारी स्त्रियों की सामान्य भावना यही होती है; यह दूसरी बात है कि आसपास के वातावरण की खराबी, सुसंगति और सुसंस्कारों के अभाव, प्रयत्न के लिए दृढ़ निश्चय की कमी, या अन्य किसी कारणवश उनका आचरण बिलकुल वैसा नहीं होता, जिससे आज का

दाम्पत्य-जीवन एकरस मालूम नहीं पड़ता। अतः प्रत्येक नववधू को सबसे पहले इसी बात पर ध्यान देना चाहिए। उसे देखना चाहिए कि सुखी दाम्पत्य-जीवन के लिए उसका अपना क्या कर्त्तव्य है और उसे वह किस तरह अमली रूप देगी। व्रत-उपवास सब व्यर्थ हैं, जब तक कि उनमें निहित भावना को आचरित न किया जाय। यह सोचकर अपने दाम्पत्य-जीवन को एकरस व सुखी बनाने के लिए प्रत्येक नववधू को दृढ़ निश्चय के साथ लग जाना चाहिए।

"यह तो ठीक है, पर व्यावहारिक रूप में इसके लिए क्या किया जाय ?" यह ऐसा प्रश्न है, जो, तुम ही नहीं, प्रत्येक नववधू पूछ सकती है। मैं सम्पूर्ण रूप में इसका जवाब देने की अपनी असमर्थता शुरूआत में ही स्वीकार कर लेता हूँ। फिर भी, इस सम्बन्ध में मैंने थोड़ा सोचने-समझने का यत्न तो किया ही है। इधर-उधर थोड़ा-बहुत इस सम्बन्ध में पढ़ा भी है। कई के दाम्पत्य-जीवन के स्याह-सफेद पहलुओं पर मैंने सूक्ष्म दृष्टिपात भी किया है। और अब तो मुझे अपने खुद के ऐसे जीवन का भी थोड़ा अनुभव हो गया है न ? इस सबके आधार पर, मैं समझता हूँ, सुखी दाम्पत्य-जीवन की अभिलाषिणी प्रत्येक नववधू को चाहिए

कि पति-गृह में प्रवेश करने के दिन से ही वह यह मानने लगे कि—

(१) पति के सुख में ही उसका सुख, पति के यश में ही उसका यश, और पति के उत्थान में ही उसका उत्थान सार्थक है।

(२) यह तो आवश्यक नहीं कि वह पति का अन्धानुसरण करे; परन्तु पति की रुचि-अरुचि और इच्छा-अनिच्छा का वह सदा ध्यान रक्खे; विवेक द्वारा उनकी छानबीन करे, और जो ठीक हों उनमें यथा-सम्भव सहयोग करे जबकि असत या अनैतिक प्रवृत्तियों को सदा मीठे पर दृढ़ रूप में निरुत्साहित करे।

(३) अपने आचरण और स्वभाव तथा स्वास्थ्य और सौन्दर्य को ऐसा रक्खे, जिससे उसके प्रति पति का आकर्षण न केवल बना ही रहे बल्कि नित्य नवीन और तरोताजा हो।

(४) अपने मन और चरित्र को निर्मल, असन्दिग्ध, रक्खे। पति से कोई छिपाव न रक्खे। पति की निन्दा न करे, यदि उसमें कोई खराबी हो तो उसे दूर करने का प्रयत्न अवश्य करे।

(५) अपने पति की पत्नी और घर की रानी होने का अभिमान करे; न केवल घर में बल्कि बाहर

भी इसका पूरा ध्यान रक्खे और इसे क्रियात्मक रूप में अपने जीवन में सर्वोपरि स्थान दे ।

(६) पति के स्वागत तथा मनोरंजन को उसे सदा प्रसन्नतापूर्वक तत्पर रहना चाहिए । बातचीत में समयोचितता का ध्यान रहे, बहसाबहसी या विवाद से बचे, आपे से बाहर या उत्तेजित न हो, और न तो कभी उदास हो और न अपनी विनम्रता को ही छोड़े ।

मतलब यह कि नववधू को अपने पति के प्रति विश्वसनीयता, शिष्टता, सरलता, स्निग्धता और छिपावहीनता (निष्कपटता) के साथ इस तरह व्यवहार करना चाहिए कि पति के मन में उसके प्रति सन्देह का भाव कदापि उत्पन्न न हो; पति उसे अपनी अनन्य विश्वासपात्र साथिन महसूस कर सके, उसके सतत-आकर्षण में बद्ध रहे और उससे अच्छे कामों के लिए प्रेरित एवं बुरे कामों के लिए हतोत्साह हो । उसमें चंचलता हो, पर गम्भीरता और समझदारी का अभाव नहीं । कमनीयता और सौन्दर्याभिरुचि हो, पर स्खलन और अनैतिकता नहीं । विनम्रता और माधुर्य हो, पर दृढता और स्थिरता का अभाव नहीं । पति के प्रति अनन्य श्रद्धा और उसकी अत्यन्त हितकामना हो, पर

बनावट (चापलूसी) और खुदगर्जी नहीं। बात को समझने और तह पर पहुँचने की वृत्ति हो, पर अहम्मन्यता और उपेक्षा नहीं। और एक ओर खुद प्रसन्न और सोत्साह रहा जाय, तहाँ दूसरी ओर पति को भी प्रसन्न और सोत्साह रखने का यत्न हो। आपस में गलतफहमी हो, ऐसी कोई बात कभी न करनी चाहिए; और जब भी कभी कोई गलतफहमी पति के प्रति हो, या पति के मन में अपने प्रति पैदा होने का सन्देह हो, तो खुले दिल से उदारता और पारस्परिक विश्वास के साथ उसका समाधान कर लेना चाहिए। पति को प्रसन्न करने के लिए उसकी मनोवृत्ति को, किन्हीं घर-बाहर वालों की निन्दा करके, दूषित और हीन बनाने का यत्न कभी न किया जाय; नहीं जहाँ दूसरों से अलग होकर आनन्द मनाने की दुर्भावना पैदा होगी, वहाँ घर-गृहस्थी की शान्ति और व्यवस्था तो नष्ट होगी ही, बाद में पति-पत्नी में भी पहले नीरसता और फिर अनबन तक हो जाने की सम्भावना है। यह ठीक है कि स्त्री पति की क्रीतदासी न बने, पर स्वेच्छा-सेविका, प्रेम-अनुचरी और बीज-गृहीता वह अवश्य बने। इस बात का सतत ध्यान रक्खा जाय कि समाज में पति के साथ ही उसका गौरव है, 'मिस्टर' के साथ ही

वह 'मिसेज़' बनकर सम्मान पाती है, और लक्ष्मी नाम पहले होने पर भी लक्ष्मीपति शब्द लक्ष्मी (अर्थात् स्त्री) से उसके पति (विष्णु, अर्थात्, पुरुष) के बड़प्पन का ही द्योतक है।

घर-गृहस्थी के प्रति

पत्नी के रूप में जैसे प्रत्येक नववधू को अपने पति की प्रियतमा और प्राणेश्वरी बनने का यत्न करना चाहिए, वैसे ही गृहिणी और गृहराज्ञी के रूप में उसे घर-गृहस्थी को समुचित रूप से सम्हालने वाली और घर के सब लोगों पर अपने व्यवहार से अमृत बरसाने वाली भी बनना चाहिए। यह दुमुखी कर्त्तव्य है। तात्पर्य यह है कि प्रत्येक नववधू को इस बात का समुचित ज्ञान और अभ्यास करना चाहिए कि आवश्यकतानुसार घर-गृहस्थी के सब काम यथासमय और तरतीबवार किए जायँ। आजकल का बड़प्पन यह दिखाई दे रहा है कि स्त्रियाँ इन कामों को करते हुए संकोच करती हैं। परन्तु लाभ की दृष्टि से यह ठीक नहीं है। मैं तो समझता हूँ कि बड़े घरों की स्त्रियों को भी घर-गृहस्थी के कामों का अभ्यास रहना चाहिए, और नौकर-चाकरों पर ही वे इसके लिए निर्भर न रहें। सर्वसामान्य स्त्रियों को तो ये जरूर

ही करने चाहिएँ। पति और अन्य लोग इसके लिए चाहे ऊपर से मना भी करें, पर वे इन्हें बिलकुल छोड़ बैठने की गलती न करें। यह याद रक्खें कि जो स्त्री घर-गृहस्थी के कामों को सुघड़ता के साथ करती है उससे सब खुश रहते हैं, घर की व्यवस्था सुधर जाती है और स्वयं उसका स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। गृहस्थ-जीवन का दूसरा पहलू यह है कि नववधू या गृहिणी जहाँ पति की प्राणेश्वरी बनने के लिए तन-मन से प्रयत्नशील हो वहाँ घर के अन्य स्त्री-पुरुषों की भी उपेक्षा न करे। उनके प्रति अपने मन को सदा शुद्ध और सद्भावपूर्ण रक्खे, अपनी सेवा और अपने सद्व्यवहार से उन्हें जीतने का यत्न करे, शुष्क और हीन व्यवहार से उन पर रौब गाँठने या किसी भी प्रकार उन्हें तंग करने का खयाल तक न करे। पति का ध्यान सर्वोपरि रहे, पर औरों को भी गैर न समझे, और सबके हित व सुख में ही अपना भी हित व सुख समझे। मैं तो यहाँ तक समझता हूँ कि नववधुएँ यह मानकर ही चलें तो अच्छा होगा कि घर के सब स्त्री-पुरुषों के हित व सुख की साधना में ही पति का व अपना भी हित व सुख-साधन है और जैसे व्रत-उपवासों के द्वारा वे पति के लिए शुभ कामना

और अपने लिए सौभाग्य-कामना करती हैं उसी प्रकार इस कल्पना को हृदयंगम करके उन्हें सबके हित व सुख के लिए सक्रिय प्रयत्न करना चाहिए। जो नव-वधू अपने प्रेममय सद्व्यवहार से एक बार सबको मोह लेती है, वह अपरिचित और नया घर होने पर भी ससुराल में सबकी आँखों पर चढ़ी रहती है और सबकी प्रशंसापात्र बनकर पति की भी प्रेमपात्र बनती है तथा अपने गुणों से गौरवान्वित एवं सबकी प्रसन्नता से प्रसन्न होती है। वह सबसे यथोचित प्रेम करती है, और किसी के प्रति कोई दुर्भाव या कटुता न रखने के कारण हरएक की स्नेह-भाजन बनती है। इससे चारों तरफ स्नेह-शान्ति का उद्भव होता है, और वह खुद तथा अन्य सभी ऊँचे उठते हैं। इसके विरुद्ध जो स्त्रियाँ पति को तो प्रसन्न रखने व जीतने का यत्न करती हैं पर दूसरों की उपेक्षा करती हैं, वे अपने व्यवहार से सबको दुःखी-नाराज रखती हैं; और उसके फलस्वरूप बँधा हुआ घर टुकड़े-टुकड़े होकर क्षोभ और अशान्ति का केन्द्र बन जाता है। ऐसी स्त्रियों का हृदय शुद्ध नहीं रहता, मन मैला और शंकाशील हो जाता है, और व्यर्थ की झूठी-सच्ची कल्पनाएँ कर-करके वे अपना और दूसरों का नुकसान करती रहती हैं।

इसीका परिणाम रोग-शोक, विषाद, क्लान्ति, तरह-तरह की चिन्ताओं आदि के रूप में सामने आता और जीवन को दु:खी एवं निकम्मा बनाता रहता है।

दुनिया के प्रति

और घर-गृहस्थी क्या है ? एक तरह की छोटी दुनिया ही तो है। इसमें रहकर हम मानो विशाल संसार में रहने का अभ्यास करते है। घर-गृहस्थी में भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के प्रति अपने कर्त्तव्य-कर्मों के समुचित पालन एवं व्यवहार की अच्छाई से हम विशाल संसार में भी उसी रूप में व्यवहार करके दुनिया के प्रति भी अच्छा व्यवहार करना सीखें, सबके प्रति अपने मन को शुद्ध और स्नेहार्द बनाने का यत्न करें—अर्थात् किसी को पीड़ित न देखना चाहें, दुखिया को देखकर दु:खी हों, और किसी का अहित-साधन भूलकर भी करने की कोशिश न करें। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और इन्द्रिय-निग्रह ये जो धर्म के मूल हैं इन्हें अपने जीवन में ढालने का यत्न करें। नववधू का जीवन इन सबकी असली शुरूआत का जीवन है। जो नववधू जितनी तैयारी और दृढ इच्छा के साथ इनकी शुरूआत करेगी वह उसी हिसाब से आगे चलकर दुनिया को ऊँचा उठाने में हिस्सेदार होगी और

अपनी अच्छी 'देन' सृष्टि को दे सकेगी।

सावधानी की जरूरत

इन कुछ खास बातों पर तुम ध्यान रक्खोगी और शुद्ध-बुद्ध निश्चयात्मक मन से इनपर अमल करने का यत्न करोगी तो, मैं समझता हूँ, शुरू में चाहे तुम्हें कुछ भार मालूम पड़े, तुम कुछ कठिनाई महसूस करो, लेकिन आगे तुम उसका सुफल जरूर पाओगी। फिर जैसे-जैसे तुम इस रास्ते पर बढ़ती जाओगी, इसके गुप्त द्वार तुम्हारे लिए इतनी अच्छी तरह खुलते चले जाएँगे जिसकी मैं--एक पुरुष--तो पूरी कल्पना भी नहीं कर सकता। इसलिए, सलाह-पर-सलाह दिए चले जाना मेरे लिए शोभा की बात तो नहीं है फिर भी, अब तक के अपने और दूसरों के जीवन तथा थोड़े-से अध्ययन-मनन से मुझे ऐसा लगता है कि जब तुम इस नए जीवन में प्रवेश कर रही हो, जो कि है तो तुम्हारा मनोवांछित पर है अब तक के तुम्हारे जीवन से एकदम भिन्न, तब अन्य बातों के साथ कुछ चेतावनी भी तुम्हें दे दूँ।

सबसे पहले तो उस बात की ओर ही मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा, जिसको लिखते हुए होता तो संकोच है पर जिसका जीवन पर बहुत ज्यादा

अच्छा-बुरा असर पड़ता है। मेरा मतलब उस रिवाज से है, जिसे हमारे यहाँ 'सोहाग-रात' कहा जाता है। इसको बड़ा महत्त्व दिया जाता है और बड़े आनन्द व उमंगों का अवसर माना जाता है। निस्सन्देह यह है भी ऐसा ही। परन्तु, बहन, जान-बूझकर या भ्रमवश जिस रूप में इसे आज मनाया जाता है वह कोई अच्छा तरीका नहीं है——और, जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, वह वास्तविक और वांछनीय भी नहीं है। तुम्हें यह बात लिखते हुए संकोच तो होता है, परन्तु जब मैं तराजू के एक पलड़े पर उस संकोच को और दूसरे पर तुम्हारे जीवन को रखता हूँ तो संकोच का पलड़ा बहुत झुक जाता है और मेरा कर्त्तव्य-भाव तकाजा करता है कि मैं तुम्हें इस बारे में पहले से आगाह कर दूँ। निस्सन्देह किसी भी नववधू की सोहाग-रात होनी तो आनन्दपूर्ण ही चाहिए, परन्तु खबरदार! वह नवीन दम्पती (नए पति-पत्नी) के प्रथम 'परिचय' का दिन हो, न कि प्रथम 'सहवास' की घड़ी। 'सहवास' तो तभी हो जब कि दोनों के दिल एक-दूसरे से खूब हिल-मिल जाएँ, दोनों से एकरस होकर आनन्द बाहर बहने लगे और दोनों के मन सुसन्तति के रूप में दुनिया को अपनी संयुक्त 'देन' देने के लिए व्याकुल हो जाएँ। लेकिन

अब तक एक-दूसरे से बिलकुल अपरिचित, जैसा कि हमारे यहाँ आम बात है, युवक-युवती विवाह के बाद सोहाग-रात की रस्म में पहलेपहल मिलते ही ऐसे हो सकते हैं ? हर्गिज़ नहीं। इस दिन तो वे एक-दूसरे को भरी आँखों देखते और खिल-खुलकर बात करते भी शर्माते हैं। ऐसी हालत में यह तो एक-दूसरे की जान-पहचान शुरू होने का दिन होना चाहिए, और विषय-वासना का उस समय ध्यान तक न आना चाहिए। परन्तु हमारे यहाँ तो सोहाग-रात का मतलब ही एक तरह 'प्रथम सहवास' हो पड़ा है, जिससे पति-पत्नी के दिल मिलने भी नहीं पाते, आपस का संकोच टूटने भी नहीं पाता, कि पुरुष एकदम 'सहवास' का दावा करता है और स्त्री उसका ऐसा अधिकार मानकर चुपचाप अपने को उसके सुपुर्द कर देती है। नतीजा यह होता है कि जो कुमारियाँ ब्याह से पहले उछलती-कूदती तरोताजा नजर आती हैं, विवाहोपरान्त वे एकदम बदलने लगती हैं। फिर नवदम्पती होते तो प्रायः तरुण ही हैं, अतः एक बार विषय की लहर में पड़े नहीं कि फिर मोह से अन्धे होकर उसी ओर बहने लगते हैं। इसीको वे एक-दूसरे के प्रति अपना प्रेम समझने लगते है और अधिक-से-अधिक विषयी बनते

जाते हैं। इसका दुष्परिणाम स्वास्थ्य-नाश और संतान-वृद्धि के रूप में तो सामने आता ही है, दूसरी ओर मोह का चश्मा भी जल्दी उतर जाता है और विषयाधिक्य से पत्नी के ताजापन व सौन्दर्य का आकर्षण घटने लगता है, जिससे फिर पति महाशय अन्यत्र न भटकते फिरें तो भी पत्नी की ओर से उदासीन बनते हैं और पत्नी अपने भाग्य को कोसती हुई रोया करती है। अतः तुम्हें, बल्कि प्रत्येक नववधू को, मेरी आग्रहपूर्ण सलाह है कि सोहाग-रात को विषयारम्भ का दिन न बनाओ और पति-प्रेम को केवल वैषयिक प्रेम मत समझो। निस्सन्देह तुम अपने पति की साथिन हो, पति का अर्द्धांग हो, और पति के सहयोग से दुनिया को अपनी श्रेष्ठ 'देन' देना तुम्हारा कर्त्तव्य है, पर पहले उसकी तैयारी करनी होगी, यह कभी न भूलो। अतः विवाहित होते हुए भी अधिक-से-अधिक संयम का जीवन बिताने की चेष्टा करो और ऐसा यत्न करो कि तुम्हारे प्रति पति का आकर्षण तो सदा बना रहे पर वैषयिक सहवास का मौका कम-से-कम आए। माना कि तुम्हारा शरीर तुम्हारे पति का भोग्य है, पर तुम्हारा भी तो उसपर कुछ अधिकार है न? यह जरूर है कि अक्खड़ता से, मूर्खता से, बेरुखी

से, डाट-डपटकर या झुँझलाकर ऐस मत करो; ऐसा करो अपने विनोदीपन से, हँसते-हँसाते हुए बात को किसी और विषय की ओर ले जाकर, या मौके के अनुरूप किसी अन्य युक्तियुक्त उपाय से, जिसमें पति को अखरे भी नहीं और तुम्हारी बचत भी होजाय। इससे तुम्हें और तुम्हारे पति दोनों को लाभ होगा। देर तक तुम्हारा सौन्दर्य और आकर्षण बना रहेगा। स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा। अनचाहे बच्चे उत्पन्न न होंगे और पति-पत्नी के दुनिया के प्रति कर्त्तव्यपरायण होने में भी बाधा न आयगी।

ध्यान रक्खो, इसका मतलब यह हर्गिज नहीं कि तुम पति से प्रेम न करो। प्रेम तो जरूर और अटूट हो, पर मोह न हो जो विषयान्ध बनाए। संयम को सदा असंयम से ऊँचा समझा जाय, और खुद ऊँचे बनकर अपनी ऊँचाई से पति को ऊँचा बनाने की प्रवृत्ति हो।

यह मैं फिर कहूँगा कि घर वालों के साथ व्यवहार में सावधानी रखनी ही चाहिए। सच्चे और शुद्ध मन से उनसे स्नेह करो, उनके दुःख-सुख में साझीदार बनो और अपने में ही मस्त न रहो। पति को सर्वोपरि मानते हुए भी उनकी (घर के अन्य लोगों की) आव-

श्यकता-अनावश्यकता और रुचि-अरुचि का भी पूरा ध्यान रक्खो। सास-ससुर, ननद-जेठानी, जेठ-देवर, भतीजा-भतीजी आदि के प्रति कोई दुर्भाव न रक्खो। सबके मनोभावों को महसूस करो और अपने सद्भाव एवं सेवा द्वारा उनको यथासम्भव प्रसन्न और सन्तुष्ट रखने की चेष्टा करो।

'गैर' या घरवालों से अन्यथा व्यक्तियों के साथ भी तुम्हें सहानुभूति रखनी चाहिए। सभी का तुम भला करो। किसी पर किसी का अन्याय-अत्याचार न चलने देने का यत्न करो। यह जरूर है कि पति को ऐसा समझने का मौका कभी न दो कि तुम दूसरों को—फिर चाहे वे आदमी हों या जेवर-कपड़े, अथवा कुछ और—उससे ज्यादा चाहती हो। एक कवि-कल्पना से काम लूँ तो, तुम्हें चाहिए कि अपने पति के प्रति तो चन्द्रकला-सी रहो और पर-पुरुषों के साथ विद्युल्लता-सी। मतलब यह कि बाहर वालों को भी तुम प्रकाश तो पहुँचाओ, यथावसर उनसे हिल-मिल भी सकती हो, लेकिन सब कुछ होने पर भी पर-पुरुषों के प्रति तुम्हारा रुख ऐसा हो कि तुमपर पाप-दृष्टि डालने का उन्हें कभी साहस ही न हो——कभी ऐसा हो जाय तो तुम बिजली की तरह कड़को और या तो उन्हें भस्म करदो या स्वयं

विविध

१

नववधू की कठिनाई

नववधू का मनस्ताप—

मैं यहाँ पर (ससुराल में) पहुँच तो गई, परन्तु बड़ी परेशानियों के साथ। रास्ते भर नींद आती रही, मगर सोने को कहीं भी जगह नहीं मिली, जिसकी वजह से तबीयत बहुत खराब हो रही है।

अब, यहाँ पर आकर तो बिलकुल जेलखाना ही हो गया। कहीं भी एकान्त में नहीं बैठने पाती। छोटी-छोटी लड़कियाँ चारों तरफ घिरी रहती हैं। जहाँ सन्दूक खोला नहीं कि फौरन सारी-की-सारी आ बैठीं। किसीने कुछ चीज निकाली, किसीने कुछ। बड़ी आफत में जान है। औरतें भी बड़ी अजीब हैं। फिर साथ वाली को भी न आने दिया। न किसीसे कहने के, न सुनने के। नहाने को आड़ की जगह नहीं—खुला मैदान है; और लड़कियाँ ऐसी हैं कि अगर परदा डालकर भी नहाएँ तो परदे में से झाँका-झूँकी मचाती हैं, जिससे शर्म के मारे नहाया नहीं जाता; जैसे-तैसे सिर्फ

मुँह-हाथ धोकर उठ बैठती हूँ। बाल सँवारने को भी एकान्त नहीं मिलता। इन सब बातों से जी परेशान होता है और कभी-कभी सोचती हूँ कि मुझे कहाँ कूड़े-करकट में फँसा दिया !

बार-बार वहाँ (पीहर) की याद आती है। जहाँ तक हो मुझे जल्दी-से-जल्दी बुला लो, नहीं तो न मालूम यहाँ पर अब मेरा क्या हाल होगा !

भला अपने अच्छे-खासे घर को छोड़कर कहाँ इस जंजाल में आकर फँसी ! ऐसा जी करता है कि अभी निकलकर भाग जाऊँ।

मेरा जी बहुत घबरा रहा है। रोना-ही-रोना आ रहा है। वहाँ की, सब की, याद आ रही है। एक तो वैसे ही मेरी हुलिया बिगड़ रही है, फिर इन सब बातों को देख-देख ऐसा लगता है कि कहाँ मौत के मुँह में आ फँसी। इतने दिनों से स्वतन्त्र जीवन बिता रही थी, अब मुझको बन्धन में जकड़कर बाँध दिया। जहाँ तक हो, जल्द बुलाने की कोशिश करो।···ता० को जरूर-जरूर बुला लेना।

बड़ी बहन का आश्वासन

तुम्हारी चिट्ठी का इन्तजार कर ही रही थी कि आज वह आ पहुँची। पढ़कर जी को ठेस-सी लगी और

तुम्हारी तरफ से चिन्ता हो गई है। मगर, बहन, तुम्हें जानना चाहिए कि हम लोगों में जैसा रिवाज पड़ रहा है उसके कारण हम सभी को इस स्थिति का थोड़ा-बहुत सामना करना ही पड़ता है। मैं ही जब ब्याहकर पहलेपहल अपनी ससुराल गई थी, तब मुझे भी कुछ कम परेशानी नहीं हुई थी। फिर तुम तो थोड़ी स्वतंत्र रही हो, और साथ वाली का सहारा भी तुम्हें नहीं मिला है, इसलिए तुम्हें तो वह परेशानी और भी ज्यादा महसूस होनी ही चाहिए।

तुम्हारी इस समय की मनोदशा को मैं महसूस कर सकती हूँ और तुम्हारे कोमल एवं भावनाशील स्वभाव को देखते हुए मुझे तुम्हारे लिए बहुत चिन्ता हो रही है। परन्तु, तुम जैसी समझदार हो उसको देखते हुए, मुझे आशा है कि इस क्षोभ और व्यथा के बीच भी तुम अपनी विवेक-बुद्धि को न खोओगी और इस बात को दरगुजर न करोगी कि ऐसी स्थिति की ज्यादातर जिम्मेदारी हमारे आज के समाज पर—आज की हमारी सामाजिक परम्परा पर—है, और इसलिए, इस पर से, अपने ससुराल वालों के बारे में कोई भी ऐसे-वैसे विचार बना लेने की गलती हर्गिज नहीं करोगी।

रही इस स्थिति से निकलने की बात। सो, बहुत विपरीत और प्रतिकूल परिस्थिति पाकर दुःख तो सभीको होता है—और ब्याह के बाद एकदम नए घर एवं नए आदमियों के बीच जाने में हम स्त्रियों को अटपटा और प्रतिकूल तो लगता ही है; लेकिन जब परम्परा ही ऐसी चल रही है, तब, उसपर रोने और झल्लाने के रूप में अपने मन और शरीर को थकाने-बिगाड़ने के बजाय, क्या यह ठीक न होगा कि हम हर तरह बुरे-से-बुरा और विपरीत व्यवहार पाकर भी अपने धीरज, संतोष, परिश्रम, कर्तृत्व और अपनी योग्यता-रूपी अपने सदाचार, सद्भाव एवं सद्गुणों से उसे बर्दाश्त करने और अपने अनुकूल बनाने का यत्न करें ? चाहे हम हँसकर रहें या दुःखी होकर, लेकिन जब वहीं हमारा घर है और वहीं हर हालत में हमें अपना निर्वाह करना है तो एक ओर हम उसके अनुकूल बनें और दूसरी ओर उन लोगों को अपने अनुकूल बनाने का यत्न करें। इसीमें हमारी शोभा है। यह जरूर है कि इसके लिए हमें अपने को बहुत दबाना, अपने पर बहुत अंकुश लगाना होगा; लेकिन जब इसके सिवा कोई चारा नहीं, तो पूरे निश्चय के साथ हमें इस प्रयत्न में जुट ही जाना चाहिए।

प्रिय बहन ! स्त्रियों के हिस्से जो यह भारी जिम्मेदारी आई है, वह अकड़कर, रौब या दर्प करके, या दूसरों को बुरा-भला कहकर पूरी नहीं की जा सकती। इसके लिए तो उन सद्गुणों की जरूरत है जो आदमी को ऊँचा उठाते हैं। कठिनाइयों से परास्त न होने का सबसे बड़ा उपाय है उनकी परवा न करना और इस आत्मविश्वास के साथ संतोषपूर्वक उनसे लड़ना कि 'आखिर हम जीतकर ही रहेंगे।' हर परिस्थिति में निबाह लेने का अपनेको आदी बनाओ। यह याद रक्खो कि दिन-रात के रूप में, और इसी तरह अलग-अलग जगह में, परिस्थितियाँ बदलती रहती हैं और उनके अनुकूल ही हमें उस समय और जगह निबाह करना पड़ता है; इसी प्रकार विवाह के रूप में पीहर से ससुराल की नई परिस्थिति में जाकर हमें उसके अनुकूल बनना ही होगा, नहीं तो कैसे काम चलेगा ? यह जरूर है कि इसके लिए हमें अपने स्वार्थ और अभिमान को मारकर दूसरों के सामने झुकना, हरएक कठिनाई को माथे पर सल न डालते हुए सहना और प्रेम एवं सेवा से सबका मन अपनी ओर आकर्षित करना पड़ेगा। इसीमें हमारे नारी-जीवन की सफलता है।

जरा और स्पष्ट करूँ तो कहूँगी कि सास-ससुर तथा ससुराल के अन्य लोग नववधू से नफरत नहीं करते, न उसको दुःखी ही करना चाहते हैं; विपरीत इसके, शुरू-शुरू में तो वे उसका बड़ा लाड़ करते हैं और उसकी कद्र व सहायता करना चाहते हैं। हाँ, यह वे जरूर चाहते हैं कि इसके बदले में बहू भी उनको अपना समझे, उनसे स्नेह और उनका आदर करे, तथा उनके घर वालों को अपना समझ कर उनका पूरा-पूरा खयाल रक्खे। यह तो सभी जानते हैं कि ब्याह के बाद ससुराल ही स्त्री का घर हो जाता है, यहाँ तक कि पीहर फिर 'महमान' के ही रूप में आना होता है। इसलिए जिस घर को चार दिन बाद नववधू अपना मानेगी उसे ब्याह के तुरन्त बाद से ही क्यों न वैसा मानने लगे? ऐसा हो तो वह वहाँ के सभी लोगों का खयाल रक्खेगी, बच्चों से मन मिलाएगी, बड़ों का उचित आदर करेगी और छोटे-बड़े सभीको अपनी सच्ची और प्रेमपूर्ण सेवा तथा अपने गुणों से जीत लेगी। मुझे तो ऐसा मौका नहीं हुआ, पर मैंने जिन बहुओं को ससुराल की ज्यादा लाड़ली देखा, उनमें से ज्यादातर वे हैं जो अपने प्रारम्भिक वधू-जीवन में

अपनी सास आदि के साथ, उनके सारे दोषों और बुरे स्वभाव के बावजूद, बड़ी इज्जत व मुहब्बत से पेश आई और हर तरह से उनकी सेवा-टहल करके उन्हें जीत लिया। बड़े-छोटे सभी नववधू की ओर आकर्षित होते हैं और उसके आदर व स्नेह के पात्र बनना तथा उसके गुणों को विकसित हुआ देखना चाहते हैं, ताकि सबके सामने वे सिर उठाकर उसकी तारीफ कर सकें। अतः बड़ों की तुम इज्जत करो, बराबरी वालों से यथोचित रूप में हिलो-मिलो और बच्चों से प्यार करो। यह ठीक है कि कभी-कभी तुम्हारा सद्भाव एवं सत्प्रयत्न भी असफल होता हुआ दिखाई देगा और तब स्वभावतः तुम्हें निराशा व क्षोभ आकर घेरेंगे, परंतु तुम्हारी तारीफ इसीमें है कि फिर भी तुम हिम्मत न हारो और प्रेम व सेवा के पथ पर चलती रहो। अगर तुम ऐसा करती रहीं तो तुम्हें ऐसी व्यथा और निराशा का सामना ज्यादा न करना पड़ेगा और जल्दी ही तुम अपनेको प्रसन्न और सन्तुष्ट पाओगी। यह याद रक्खो कि साहस के साथ सत्प्रयत्न में जो डटा रहता है, परमेश्वर भी उसका जरूर मददगार होता है; और, उसकी सारी कठिनाइयाँ हल हो जाती हैं।

जो घबराने और यहाँकी बार-बार याद आने

की बात पढ़कर मुझे भी अपने ब्याह की हालत याद आती है, परन्तु जैसे समय के साथ-साथ मेरी वह स्थिति नहीं रही वैसे ही धीरे-धीरे तुम्हारा भी हाल होगा और एक दिन ऐसा भी आजायगा कि तब यहाँ से ज्यादा तुम वहाँ की फिक्र करने लगोगी। इसमें कूड़ा-करकट या मौत़ के मुँह में फँसने की क्या बात ? डंठल में काँटा देखकर क्या यह समझ लोगी कि गुलाब का फूल ही ठीक नहीं ? तुम जैसी समझदार को यह बात शोभा नहीं देती। तुमसे तो यही उम्मीद की जाती है कि उस काँटे को अपनी कोशिश से तुम हटा दोगी और गुलाब का पूरा मजा लोगी। यही ठीक भी है।

तुम्हें जल्दी बुलाने को पत्र तो लिखा ही जा रहा है, मगर यह याद रक्खो कि इस बीच तुम्हारा कोई व्यवहार या बात ऐसी न हो जिससे किसी को भी शिकायत हो या किसी का मन दुखे। किसी के प्रति निरादर या अपशब्द न हो। अपने व्यवहार और मन को इस तरह साधा तो तुम अपनी ही नहीं इस घर भर की तारीफ कराओगी; अन्यथा न तुम्हारी तारीफ होगी न इस घर की। तुम इसमें क्या बात पसन्द करती हो, यह मैं जानती हूँ; इसलिए मुझे यह भी पूरी

उम्मीद है कि इस क्षणिक आवेग को दबाकर जैसा मैंने लिखा है वैसे ही प्रयत्न करके सास, ससुर आदि सबको तुम अपना प्रशंसक बनाकर ही यहाँ आओगी ।

२

विवाह झंझट है

नववधू का पत्र—

(पीहर) छुटने की वेदना तो विकल करती ही रहती है, परन्तु उसके साथ कभी-कभी विवाह झंझट मालूम देने लगता है।

मैं सोचती थी, कि ससुराल में अगर कोई कुछ करना चाहे तो मुश्किल नहीं है। किन्तु अभी तो मुझे अपने काम पूरे होने बहुत कठिन मालूम दे रहे हैं। कह नहीं सकती कि भविष्य कैसा हो। उस दिन की मैं प्रतीक्षा में हूँ, जब कि मैं आगे बढ़ सकूँगी।

अगर स्वयं कोई होशियार है, तो वह थोड़ी-सी चेष्टा से सब-कुछ कर सकता है। परन्तु, मैं तो 'किसी' की मदद चाहती थी, या चाहती हूँ न! मेरे दिमाग को 'कोई' बहुत मसाला दे दे—मुझे 'कोई' ऊँचा उठा दे। विघ्न-बाधाओं को मैं सहने के लिए तैयार हूँ, बशर्ते कि मुझे 'कोई' प्रोत्साहित करता रहे।

आजकल मेरी विचारधारा यही है। कुछ निश्चय नहीं कर पाती कि मेरा क्या कर्त्तव्य है। कभी-कभी

हृदय की ज्वाला बढ़ने लगती है। दिल चाहता है कि अपने विचारों को पूरा करने में जो बाधाएँ हैं उनके विरुद्ध आवाज उठाऊँ--किन्तु, किस बल पर ? अब तो अपने भाग्य के ही भरोसे हूँ। देखती हूँ क्या होता है ?

भाई का जवाब

तुम्हारी मनोदशा को मैं महसूस कर सकता हूँ। विवाह झंझट मालूम देने लगना भी अस्वाभाविक नहीं। मैंने खुद न जाने कितनी बार यह महसूस किया है और करने लगता हूँ। लेकिन, तुम्हें, शुरू से ही निराशा को गले नहीं लगाना चाहिए। झंझट हरएक बात में लगता है, लेकिन उसे अपने मार्ग में बाधक न होने देना ही पुरुषार्थ है और उसीमें कल्याण है। 'अगर कोई कुछ करना चाहे तो मुश्किल नहीं है,' इसके बजाय यों सोचो तो ज्यादा अच्छा होगा कि 'अगर कोई कुछ करना चाहे तो असम्भव नहीं है।' मुश्किलें तो हरएक अच्छे काम में होती हैं, उन्हें अपने उद्योग से आसान बनाना ही हमारा प्रयत्न होना चाहिए। ऐसा कर लेने पर उससे आनन्द की सृष्टि होगी और जीवन सुखी बनेगा।

'अगर स्वयं कोई होशियार है तो वह थोड़ी-सी

चेष्टा से ही सब कुछ कर सकता है, परन्तु मैं तो किसी की मदद चाहती थी या चाहती हूँ न ?' कहकर अपने में अविश्वास मत करो। 'कोई' के ऊँचा उठाने की प्रतीक्षा मत करो। माना कि 'कोई' प्रोत्साहित करता रहे तो सब विघ्न-बाधाओं को सह सकती हो; परन्तु 'कोई' ऐसा करे या नहीं, यह तो उसीकी मर्जी पर है न ? तुम्हारा बस तो सिर्फ अपने ही ऊपर है। अतः जो कुछ सोचो अपने बूते पर, अकेले अपने प्रयत्न पर; किसी के सहारे की प्रतीक्षा करके परमुखापेक्षी मत बनो। आत्मविश्वास ही जीवन का सबसे बड़ा सहारा है और स्वाश्रय ही मनुष्य को सफलता के सिरे पर ले जाता है। दूसरों का प्रोत्साहन सोने में सुहागा सिद्ध होता है, इसमें शक नहीं; लेकिन वह मिले ही यह निश्चय नहीं होता, इसलिए उसी पर निर्भर रहना ठीक नहीं है।

निराशा असफलता की पेशबन्दी है, इसलिए उससे तो बिलकुल बचना ही चाहिए। भाग्य का भरोसा करना वहीं तक ठीक है जहाँ तक यह विश्वास रहे कि जो कुछ होगा वह अच्छा ही होगा, बुरा कुछ हो ही नहीं सकता, और हमारी सत्कामनाएँ जरूर पूरी होंगी।

एक बात और कहूँ ? अपने जीवन में मैंने बार-बार यह बात देखी है कि जब-जब किसी के प्रोत्साहन की या और किसी बात की बहुत प्रतीक्षा की, उसपर आधार रक्खा, तब-तब निराश ही होना पड़ा, और जब उसकी आशा छोड़ दी, या नहीं की, तब वह अनायास मिल गया।

लेकिन जहाँ आत्मविश्वास पर मैं जोर देता हूँ, वहाँ यह कभी नहीं कहता कि 'किसी' की उपेक्षा करो। नहीं, ऐसा कभी न हो। जब तुम दूसरे को प्रेरणा और प्रोत्साहन देती रहोगी तभी तुम उससे वैसा पाने की आशा कर सकती हो। सेवा, त्याग, सन्तोष, प्रेम और लगन के साथ अपना सोचा करने में लगी रहो तो एक दिन ऐसा जरूर आयगा कि तुम अपने मनोरथ पूरे हुए पाओगी और 'किसी' के प्रोत्साहन का वरदहस्त तुम्हारे सिर पर होगा। और तब, निश्चय ही, विवाह झंझट न मालूम होकर सत्-चित्-आनन्द (सच्चिदानन्द) का दाता मालूम पड़ेगा।

३

आनन्द का राजमार्ग

नववधू का दूसरा पत्र—

मुझमें एक बड़ी भारी कमजोरी है, जो मुझे स्वयं ही बहुत खटकती है। वह यह कि जरा-सी बात में मुझे निराशा हो जाती है। इसको दूर करने की मैं चेष्टा करती ही रहती हूँ; किन्तु सफल कहाँ तक होती हूँ, यह कहना कठिन है।

जीवन में प्रायः मामूली अनेक छोटी-छोटी घटनाएँ ऐसी होती ही रहती हैं, जिनकी व्याख्या करना भी कठिन प्रतीत होता है, कि उनसे मुझे असन्तोष हो जाता है। मैं यह जानती हूँ कि जीवन में कठिन समस्याओं को पार करके ही सफलता मिलती है, किन्तु जब असन्तोष का अन्धड़ दिमाग में घुसता है तब ये विचार पता नहीं कहाँ गायब हो जाते हैं।

हाँ, आपने अपने पहले पत्र में आत्मविश्वास का जिक्र किया था। मैं आजकल उसीमें विश्वास करने की चेष्टा कर रही हूँ। देखिए क्या होता है?

भाई का जवाब

अपनी मानसिक स्थिति के बारे में तुमने जो बात

लिखी, वह अस्वाभाविक नहीं है। बड़े-से-बड़े साधकों को भी ऐसी स्थितियों में से गुजरना पड़ता है और ऊँचाई पर पहुँचकर भी उनके सामने 'शैतान' का यह 'खेल' होता ही रहता है। इसीलिए जीवन में सतत जागरूक रहने के लिए कहा गया है।

जरा-सी बात में निराशा ! सुनने में बात बड़ी हास्यास्पद लगती है; परन्तु कितने ऐसे हैं, जो इससे ऊपर उठ गए हैं ? मैं तो स्वयं भी इससे काफी जर्जरित हो चुका हूँ और इससे बचने का प्रयत्न करने पर भी, अब भी, इसका शिकार होता रहता हूँ। और भी जिन लोगों के संसर्ग में मैं आया हूँ, साधारण से लेकर काफी ऊँचे लोगों में भी थोड़े-बहुत रूप में यह बात मैंने पाई है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि हम इससे हारकर बैठ जाएँ, बल्कि इससे मुकाबले की हमें और ज्यादा चेष्टा करनी चाहिए और 'औरों की भी यही स्थिति है' यह समझकर हमें विश्वास करना चाहिए कि इसके मुकाबले के लिए हम भी किसी से कम बलवान नहीं हैं। यह आत्मविश्वास और उस आत्मविश्वास से प्रेरित हमारा प्रयत्न ही एक-न-एक दिन हमें सफलमनोरथ करेगा।

तुम आत्मविश्वास की चेष्टा कर रही हो, यह

बहुत अच्छी बात है। लेकिन अपने बचपन में किसो स्कूली किताब में पढ़ी यह बात मुझे आज भी भली भाँति याद है कि 'श्रेयांसि बहु विघ्नानि'—अर्थात्, अच्छे कामों के करने में बहुत विघ्न उपस्थित होते हैं। और, अब तो इसका व्यावहारिक अनुभव भी हो गया है। अतः अपने इस प्रयत्न में तुम यह समझकर ही बढ़ो कि तुम्हारे रास्ते में एक के बाद एक नए-नए विघ्न उपस्थित होंगे और तुम्हें इस सत्प्रयत्न से हतोत्साह करने की चेष्टा करेंगे। अगर तुम पहले से ही यह ध्यान रक्खोगी, तो ऐसे विघ्न उपस्थित होने पर निराशा और निरुत्साह तुमपर इतने हावी न हो सकेंगे कि तुम उस मार्ग को ही छोड़ दो; फलतः तुम्हारा प्रयत्न जारी रहेगा, और एक-न-एक दिन ऐसी स्थिति को तुम जरूर पहुँच जाओगी जबकि साधारणतः तुम्हारा मन शान्त, सन्तुष्ट अतएव सुखी रहेगा। जिस दिन ऐसा हो सकेगा उस दिन सचमुच तुम अबसे बहुत ऊँची उठ जाओगी, और न सिर्फ स्वयं आनन्दित होगी बल्कि अपने प्रियतम, स्वजन एवं सम्पर्क में आने वाले सभी में आनन्द की रश्मियाँ प्रस्फुटित करोगी।

ईश्वर करे कि वह दिन जल्दी आए!